ओ३म्

# आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 17 मई 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 17 मई 2015 से 23 मई 2015

ज्ये.कृ. 14 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 20, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

## डी.ए.वी. इंटरनेशनल ने महात्मा हंसराज जी की जन्म स्थली पर मनाया अपना 18वां स्थापना दिवस

डी.ए.वी. इंटरनैशनल स्कूल, अमृतसर ने अपने 18वें स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में महात्मा हंसराज जी की जन्म स्थली बजवाड़ा (होशियारपुर) में विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया। आर्य प्रतिनिधि उपसभा, पंजाब की प्रधाना प्रिंसीपल श्रीमती नीलम कामरा के मार्गदर्शन एवं विद्यालय की प्रिंसीपल अंजना गुप्ता के निर्देशन में विद्यालय की ओर से बजवाड़ा में एक विशेष हवन का आयोजन किया गया। जिसमें छात्र–छात्राओं एवं शिक्षक वर्ग ने स्थानीय आर्यजनों के साथ मिलकर आहुतियाँ अर्पित कीं।

वैदिक भजनों का गायन किया गया। प्रिंसीपल अंजना गुप्ता ने कहा कि डी.ए.वी. प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली के प्रधान 'आर्यरत्न श्री पूनम सूरी जी का यह प्रयास कि हर विद्यालय क्रमवार बजवाड़ा में हवन यज्ञ का आयोजन करे। महात्मा हंसराज के शिक्षा आन्दोलन की एक कड़ी डी.ए.वी. इंटरनैशनल स्कूल की स्थापना डी.ए.वी. समिति द्वारा की गई। अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय पुरस्कारों के अलंकृत डी.ए.वी. इंटरनैशनल के विद्यार्थी शिक्षा के साथ–साथ खेलों एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में भी अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं कड़े परिश्रम से विशिष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त कर रहे है।

उन्होंने कहा कि महात्मा हंसराज जी ने अपना सारा जीवन समाज कल्याण एवं शिक्षा को अर्पित कर दिया। हंसराज जी की जन्मस्थली एक पुनीत धाम है, ऐसी जगह पर विद्यालय के स्थापना दिवस का आयोजन सौभाग्य की बात है। महात्मा हंसराज जी की शिक्षाओं को जन–जन तक पहुँचाना ही हमारा परम धर्म है और हम सदैव इस कार्य में रत रहेंगे।

विद्यालय के चैयरमैन माननीय डॉ. वी.पी. लखनपाल, क्षेत्रीय निदेशिका डॉ. नीलम कामरा, प्रबन्धक राजेश कुमार ने विद्यालय परिवार को 18वें स्थापना दिवस पर बधाई दी एवं इस कार्यक्रम के आयोजन की सराहना की।

## वेदव्यास डी.ए.वी. विकासपुरी में वैदिक धर्मचर्चा एवं आध्यात्मिक सम्मेलन का आयोजन

पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान के साथ–साथ वैदिक ज्ञान–विज्ञान के प्रचार–प्रसार को गति देने में अग्रणी डी.ए.वी. की शाखा वेदव्यास डी.ए.वी. स्कूल विकासपुरी में अध्यापकों को वैदिक धर्म–दर्शन अध्यात्म एवं संस्कृति से सुपरिचत कराने हेतु दो दिवसीय वैदिक धर्मचर्चा एवं, आध्यात्मिक सम्मेलन का आयोजन प्रि. चित्रा नाकरा जी के नेतृत्व किया गया।

सम्मेलन में आर्यजगत् एवं डी.ए.वी. के मूर्धन्य विद्वानों एवं, अधिकारियों तथा डी.ए.वी. विद्यालयों के धर्माचार्यों ने भाग लेकर सम्मेलन की शोभा को बढाया।

प्रथम दिन को मुख्य वक्ता के रूप में पधारे गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. धर्मपाल जी ने आनन्द की प्राप्ति विषय को लक्ष्य कर अपने विचार व्यक्त किये। आपने आनंद प्राप्ति के चार सोपानों पर बल दिया जिन का अनुसरण कर व्यक्ति संसार में सुख के साथ–साथ आनंद की प्राप्त कर सकता है।

सम्मलेन के दूसरे मुख्य वक्ता डॉ. जयेंद्र कुमार जी ने गुरु महिमा एवं अध्यापकों का कर्तव्य विषय पर अपना सारगर्भित उद्बोधन दिया। आपने अध्यापकों को संयमी, परिश्रमी तथा उच्च आदर्शवादी बनने का उपदेश किया।

द्विदिवसीय सम्मेलन का आयोजन प्रतिदिन यज्ञ–हवन के साथ प्रारंभ हुआ। सम्मेलन में डी.ए.वी. कमेटी से पधारे माननीय श्री एस.के. शर्मा जी, निदेशक, डी.ए.वी. प्रकाशन विभाग, श्री प्रबोध महाजन जी, उपाध्यक्ष, डी.ए.वी. प्रबंधकत्री समिति तथा विद्यालय के अध्यक्ष श्री एन.के. ओबरॉय तथा प्रबंधक श्री एस.के जैन ने अपने प्रेरणाप्रद विचारों से उपस्थितजनों का मार्ग दर्शन किया। इस अवसर पर प्रतिवर्ष की भाँति सभी को स्वाध्याय हेतु "वैदिक साहित्य" का वितरण किया गया। आर्य समाज की मन्त्राणी श्रीमती कीर्ति बजाज जी ने समाज के कार्यों एवं भावी योजनाओं को प्रकट किया। सम्मेलन का संयोजन श्री हरेन्द्र शास्त्री जी, हरिदेव आर्य एवं उदेश आर्या जी द्वारा किया गया।

धन्यवाद, शान्तिपाठ तथा प्रतिभोज द्वारा सम्मेलन का समापन हुआ।

## डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सेक्टर -14, गुंडगाँव के छात्र राज्य स्तर पर पुरस्कृत

यातायात नियमों की जागरूकता के प्रचार–प्रसार हेतु यातायात पुलिस विभाग द्वारा 'गुडगाँव सड़क सुरक्षा महोत्सव 2014–15 'के अंतर्गत विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

उक्त प्रतियोगिता का पुरस्कार वितरण समारोह में प्रश्न–मंच प्रतियोगिता के अंतर्गत डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सेक्टर–14, गुडगाँव के माध्यमिक स्तर के छात्र, गौरांग बंसल, साईं शुभम् तथा हर्षित कथूरिया को प्रथम पुरस्कार स्वरूप स्वर्णपदक, प्रमाण–पत्र, मिनी आई पैड, एक बैग और शब्दकोश मिले तथा चित्रकला प्रतियोगिता में वंशिका कटारिया जो कि दूसरे स्थान पर विजेयता रही उसे रजतपदक, प्रमाण–पत्र, 7500 रूपये का चैक, एक बैग तथा शब्दकोश द्वारा पुरस्कृत किया गया। महोत्सव द्वारा यातायात नियमों के पालन हेतु छात्रों को प्रोत्साहित किया गया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

ओ३म्
# आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 17 मई, 2015 से 23 मई, 2015

## वन्दे मातरम्

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

**शिला भूमिरश्मा पांसुः, सा भूमिः संधृता धृता।**
**तस्यै हिरण्यवक्षसे, पृथिव्या अकरं नमः।। अथर्व**

ऋषिः अथर्वा। देवता भूमिः। छन्दः अनुष्टुप्।

● (**शिला**) शिला, (**अश्मा**) पत्थर, (**पांसुः**) धुलि [ही] (भूमिः) भूमि [है]। (**सा भूमिः**) वह भूमि (**संधृता**) सम्यक् प्रकार धारण की जाकर (**धृता**) [राष्ट्र के रूप में] धृत हो जाती है। (तस्यै) उस (**हिरण्यवक्षसे**) हिरण्यवक्षा, सुवर्णगर्भा (**पृथिव्यै**) भूमि के लिए (**नमः अकरं**) नमस्कार करता हूँ।

● जिस राष्ट्र–भूमि पर हम अपना तन–मन धन बलिदान करने को तैयार रहते हैं, जिसके गौरव–गीत गाते हम नहीं थकते, जिसकी निन्दा सुन हमारा चेहरा तमतमा उठता है, और जिसकी प्रशंसा सुन हम आनन्द–विभोर हो जाते हैं, उसका विश्लेषण करके देखें तो वह शिला, पत्थर, धूलि आदि का निर्जीव समूह मात्र है। वह क्या वस्तु है जो उस निर्जीव पृथिवी को सजीव राष्ट्र के रूप में परिणत कर देती है? वह वस्तु है उसके निवासियों का परस्पर संगठित होकर, सबको एक इकाई मानकर, अपने अभ्युदय के लिए उसे संधृत करना। संधृत करने में भूमि के वन, पर्वत, खेत, बाग–बगीचे, मैदान, खनिज की खानें, नदियाँ, समुद्र, सबको सजाना–सँवारना, अधिकाधिक उपयोगी बनाना,उद्योग–धधों, कल–कारखानों आदि को प्रतिष्ठित एवं विकसित करके उत्पादन बढ़ाना, प्रजा की शिक्षा–दीक्षा, चिकित्सा, सामाजिक उन्नति आदि की व्यवस्था करना सब सम्मिलित है। ऐसा करने पर वह शिला, पत्थर, धूल–मिट्टी का ढेर मात्र निष्प्राण पृथिवी सप्राण राष्ट्र–भूमि के रूप में आदृत होने लगती है। तब उसके सम्मान को हम अपना सम्मान और उसके अपमान को अपने समझने लगते हैं। उसकी एक–एक इंच भूमि की रक्षा को, उसकी चतुर्मुखीन उन्नति को, उसकी कीर्ति–प्रतिष्ठा को अन्य राष्ट्रों में उसे उच्च स्थान दिलाने को हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

भूमि 'हिरण्यवक्षाः' तो पहले से ही है क्योंकि उसके गर्भ में कहीं सुवर्ण–रजत की खानें भरी हैं, कहीं हीरे मोती, रत्न, मणियाँ बिछी हैं, कहीं मूल्यवान् तैल–कूप भरे हैं, कहीं अन्य विविध खनिज द्रव्य विद्यमान हैं। किन्तु अब राष्ट्र–भूमि का रूप धारण करने के पश्चात् तो वह सच्चे अर्थों में हमारे लिए 'हिरण्यवक्षाः' हो गई है, क्योंकि हमारे राष्ट्र द्वारा 'कहाँ कौन–सी सम्पत्ति भू–गर्भ में छिपी पड़ी है' इसका अनुसंधान करके राष्ट्रियस्तर पर उसमें से हिरण्यादि सम्पत्ति को प्रजा के हितार्थ निकाला जाने लगा है।

हे अपने वक्षः स्थलपर हिरण्य–हार से अलंकृत मणिमुक्तारत्नापलंकारधारिणी, सुजला ,सुफला, मलयज–शीतला, सदस्य–श्यामला, गौरव–मंडिता, यशस्विनी, मनोमोहिनी, समृद्धिमयी मातृभूमि! तुझे हमारा नमस्कार है, शतशः नमस्कार है।

❑

**वेद मंजरी से**

**इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।**

## महामन्त्र

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी कि एक अमेरिकन ने गंगोत्री में पहुंचकर कहा कि वह वस्तु जो वैभवशाली अमरीका में नहीं है परंतु यहाँ मिली, उसका नाम शान्ति और आनन्द है। आज भी भारत को गौरव प्राप्त है कि वह अशान्त, दुःखी, तड़पती हुई दुनिया को शान्ति और आनन्द का मार्ग दिखला सकता है। अब तो धन–दौलत ही प्रधान हो गई है। धन कोई बुरी वस्तु नहीं है परंतु जिस ढंग से कमाई और व्यय किया जा रहा है, वह कष्ट, क्लेश, विपदा, रोग तथा मृत्यु का कारण बन गया है।

मानव को चाहिए कि प्रभु का स्मरण कर धन को प्राप्त करे। इससे यश–कीर्ति मिलती है, इस प्रकार के वैभव उसके पग चूमते हैं। सैंकड़ों हाथों से एकत्र करो और हजारों हाथों से बाँटो। धन कमाकर धन बाँटने वाले अमर हो जाते हैं। मानव को लोभ नहीं करना चाहिए। जब लोभ मर्यादा से बढ़ जाता है तब कमाई या धन अपवित्र हो जाते हैं।

धन कमाने की मर्यादा है कि किसी को सताप न देकर, दुर्जनों के आगे नम्र न होकर और सत्पुरुषों के मार्ग को न त्यागकर जो थोड़ा भी प्राप्त होगा, वही उचित है। धन के लिए चरित्र न बेचो। सदाचार की यत्न से रक्षा करो। धन तो आता है और जाता है। मानव आचरण से ही आर्य होता है– न धन से, न विद्या से।

अब आगे....

**अमरीका और रूस क्या कर रहे हैं?–**

परन्तु यह वृत्त और वित्त की बात तो उनके लिए है जो शरीर तथा आत्मा दोनों का साथ–साथ कल्याण करने की भावना रखते हैं। जिनके सामने केवल शरीर, केवल स्थूल जगत् है, वे तो वृत्त की कौड़ी कीमत नहीं आँकते। अमरीका और रूस की तरह ऐसे लोग इसी में अपनी बड़ाई समझे बैठे हैं कि जैसे–तैसे धन एकत्र करो और फिर उसे दुनिया में युद्ध की प्रलयंकारी आग जलाकर जलती मानवता का तमाशा देखने में व्यय करो। क्या कर रहे हैं आजकल के सभ्य कहलाने वाले ये देश? धन और युद्ध–सामग्री दे–देकर वे अपना प्रभुत्व बढ़ाने की चिन्ता में मीठी नींद भी खो बैठे हैं। जंगली जातियाँ जैसे कुक्करों की लड़ाई देखकर मन प्रसन्न करती थीं, उसी प्रकार ये सभ्य लोग देश से देश को लड़ाकर, मनुष्य से मनुष्य का रक्तपात कराकर प्रसन्न हो रहे हैं। और इसका एकमात्र कारण यह है कि प्राचीनकाल में वेद के अनुसार लोक और परलोक दोनों को साधनेवाले जो साधन कार्य में लाये जाते थे, उन्हें आधुनिक काल के लोग सर्वथा भूल चुके हैं, और अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं।

**लोक–परलोक सुधारनेवाले साधन–**

तब वे कौन–से साधन थे जिनको प्रयोग में लाकर लोक–परलोक दोनों साध लिये जाते थे? वेदानुसार ज्ञान, कर्म, उपासना, यही वे साधन थे, जिनका सुन्दर वर्णन वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, दर्शनों, उपनिषदों तथा प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकों में पाया जाता है। वेद ही वह पवित्र स्रोत है, जहाँ से ज्ञान, कर्म, उपासना की तीनों निर्मल नदियाँ निकली हैं, और गायत्री–मन्त्र इन तीनों का सार है।

**ज्ञान क्या?**– ईश्वर–जीव–प्रकृति का ज्ञान।

**कर्म क्या?**– आत्मा के उत्थान के लिए शुभ कर्म।

**उपासना क्या?**– आत्मा का परमात्मा से मिलाप।

और इन तीनों का सम्मिश्रण गायत्री–मन्त्र में विद्यमान है। इसीलिए गायत्री–मन्त्र द्वारा लोक–परलोक दोनों का सुधार हो जाता है। कैसे हो जाता है सुधार? यह तो पुस्तक के अगले पृष्ठ पढ़ने पर आपको ज्ञात हो जायेगा, परन्तु यहाँ इतना निवेदन करना चाहता हूँ कि पूर्ण श्रद्धा, विश्वास तथा विधि–अनुसार अब भी जिस किसी साधक ने गायत्री–मन्त्र द्वारा उपासना की है, और गायत्री के आदेश को अपने जीवन में ढाला है, उसने केवल अपना ही नहीं, दुनिया का भी कल्याण किया है। गायत्री–मन्त्र के अमोघ अस्त्र द्वारा केवल बड़े–बड़े महानुभावों, ऋषियों, तपस्वियों और विद्वानों ने ही लाभ नहीं उठाया, तुच्छ–से–तुच्छ व्यक्ति भी इस महामन्त्र द्वारा इस लोक के हर प्रकार के वैभव भी प्राप्त करने में सफल हुए हैं

और परमात्मा के साथ मिलाप करने के भी अधिकारी बने हैं।

**गायत्री द्वारा लोक–परलोक**

अथर्ववेद का यह अटल सत्य है कि–

**ओम् स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ता पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राण प्रजां पशु कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।।**

अथर्व. काण्ड 19, सूक्त 71, मन्त्र 1।।

–द्विजों को पवित्र करने वाली (अच्छी प्रेरणा करनेवाली) गायत्री की मैंने स्तुति की है। उसका विस्तार–प्रचार करो, वह आयु, स्वास्थ्य, प्रजा–सन्तान, पशु, कीर्ति–यश, धन और ब्रह्मतेज मुझे देकर ब्रह्मलोक पहुँचाती है।

यह तथ्य जिस प्रकार पहले युगों में सत्य था, वैसे आज भी सत्य है। वेद भगवान् के आदेश सारे युगों, सारे स्थानों के लिए एक ही जैसा प्रभाव रखते हैं। इसीलए गायत्री–मन्त्र द्वारा जहाँ पूर्व के युगों में लोक–परलोक दोनों सुधरते थे, वैसे ही आज भी सुधरते हैं। परमात्मा की ओर से जितने पदार्थ मानव के सुख–कल्याण के लिए मिले हैं, वे सर्वदा अपने गुण स्थिर रखते हैं। जल सत्य–युग में प्यासे की प्यास बुझाता था तो आज का पिपासु भी जल पीकर तृप्त हो जाता है। यदि पहले युगों में सूर्य देवता हमें ज्योति, गर्मी, वर्षा देते थे तो आज भी उस देवता द्वारा वे पदार्थ हमें प्राप्त हो रहे हैं। इसी प्रकार गायत्री–मन्त्र द्वारा हमारे प्राचीन पूर्वजों ने लाभ उठाया तो आज हम भी उठा सकते हैं। हाँ, यह आवश्यक है कि जो मनुष्य गायत्री–मन्त्र को अपने लोक–परलोक के सुधार का मुख्य साधन बनाना चाहता है, वह अनन्य भक्ति, पूर्ण श्रद्धा, सच्चे प्रेम और अटूट विश्वास के साथ गायत्री की साधना आरम्भ करे, और इस गायत्री (मन्त्र) में मानव–जीवन के कल्याण के लिए जो आदेश हैं, उन्हें अपने जीवन में चरितार्थ करने का पूरा यत्न करें।

**मेरा अनुभव–**

मेरा अनुभव यह है कि तन्मय होकर हृदय की अन्तिम कोर से गायत्री–मन्त्र का जप किया जाता है और साथ ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर–प्रणिधान की चट्टान पर मानव–जीवन के भवन का निर्माण करने का भरसक प्रयत्न किया जाता है, तो परमात्मा की सविता–शक्ति (जो इस मन्त्र का देवता है) ने जिस प्रकार सोई हुई प्रकृति को प्रेरणा करके दृश्यमान संसार का रूप दे दिया था, उसी प्रकार गायत्री का साधक इस सविता–शक्ति द्वारा परमात्मा से प्रेरणा प्राप्त करता है। उसकी बुद्धि निर्मल, सात्त्विकी, तीव्र, शुभ्र तथा पवित्र होते–होते ऋतम्भरा प्रज्ञा बन जाती है, जो साधक का ठीक पथ–प्रदर्शन करती चली जाती है। जब बुद्धि 'ऋतम्भरा' हो गई, साथ ही प्रभु–कृपा प्राप्त हो गई तो संसार की कौन–सी वस्तु गायत्री के साधक के लिए अलभ्य रह जाती है? ठीक ही तो कहा है–

**किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने!**

–शोभा–निकेतन भगवान् के प्रसन्न होने पर क्या अलभ्य रहता है!

और 'योगदर्शन' का भाष्य करते हुए श्री व्यास मुनि जी ने अपना अनुभव भी बतलाया है–

**भक्तिविशेषादाऽऽवर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण।**

योग. 1।23, व्यास–भाष्य।।

–भक्ति–विशेष से झुकाया हुआ ईश्वर अपने शुभ संकल्प से उस पर अनुग्रह करता है। जड़ पदार्थ प्रकृति को प्रेरणा देकर उस प्रभु ने क्या–से–क्या बना दिया और मनुष्य एक सत्, चेतन और अमर आत्मावाला है, तो क्या इस चेतन को वह प्रेरणा न देगा? वह तो सर्वव्यापक प्रेरक और नियन्ता है।

**सविता–शक्ति अब भी प्रेरणा दे रही है–**

उसकी प्रेरणा शक्ति केवल आदिसृष्टि के लिए नहीं थी, वह तो अब भी प्रतिरक्षण हमें प्रेरणा दे रही है। हृदयाकाश में विराजमान वह प्रेरक प्रतिक्षण मानव के कल्याण के लिए प्रेरणा करता रहता है। महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थ–प्रकाश' के सातवें समुल्लास में इसका वर्णन बड़े स्पष्ट शब्दों में किया है। महाराज लिखते हैं–

"जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उसी समय जीव की इच्छा, ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाते हैं। उसी क्षण आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कर्मों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।"

और नवम समुल्लास में यह आदेश है–

"जब इन्द्रियाँ अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है, वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है और जो विपरीत वर्त्तता है वह बन्धजन्य दुःख भोगता है।"

हाँ, यत्न यह होना चाहिए कि गायत्री का साधक अन्तरात्मा में आनेवाली प्रेरणा को, शिक्षा को और इस आवाज़ को अनुभव करने के लिए तैयारी करे। यह तैयारी गायत्री–जप के द्वारा ही करनी होती है, और इसकी विधि आप अगले पन्नों में पढ़ेंगे।

साधक को इस श्रद्धा और विश्वास के साथ परमात्मा से यह याचना करनी है कि सारी शक्तियों के भण्डार प्रभो! जब तूने अपनी सविता–शक्ति के नन्हे–से प्रयोग से इतना बड़ा विशाल संसार रच दिया है जिसमें एक, दो, तीन नहीं अपितु दो अरब सूर्य और उन सूर्यों के नक्षत्र, ग्रह तथा मण्डल विद्यमान है, तब ओ दयावान्! मेरी नन्हीं–सी बुद्धि को प्रेरणा करने में मुझे क्या कोई श्रम होगा? मेरी टेर सुन, और मेरी बुद्धि को प्रकृति से हटाकर अपनी ओर ले चल! मेरी बागडोर तुम्हारे अर्पण है, जिधर तुम चाहो ले चलो–

**दर पर तेरे आन खड़े हैं बने सवाली नाथ!**
**तुझ बिन अपना और न कोई लाज तिहारे हाथ।।**

**प्रभु साधक की बात सुनते हैं–**

इस प्रकार साधक जब आत्मसमर्पण कर देता है– क्योंकि गायत्री–मन्त्र है ही आत्मसमर्पण का मन्त्र–तब क्या परमात्मा उसको अपना नहीं लेते? ऐसा कहने से तो भगवान् के कितने ही गुणों की निन्दा हो जाएगी। वे तो पतित–पावन, दयामय, स्नेहमय, प्रेममय प्रभु हैं। वे तो भक्तवत्सल भगवान् हैं, करुणामय स्वामी हैं, प्रीतिमय सखा हैं, प्रेममय कान्त हैं। वे तो अद्भुत मित्र और सखा हैं। तब वे अपनी शरण में आये साधक की टेर सुनेंगे क्यों नहीं? हाँ, वे सुनते तब हैं जब देख लेते हैं कि परमात्मा के प्रति अब परम प्रेम हो चुका है, और हृदय–मन्दिर में भगवान् के दर्शन के अतिरिक्त अन्य कोई अभिलाषा अब रही नहीं। साधक कबीर के शब्दों में कहता है–

**कबिरा काजल रेखहू, अब तो दई न जाय।**
**नैनन प्रियतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाय।।**

और भक्ति के रस में सनी, प्रेम–दीवानी मीरा मस्ती में रोगी होने पर भी यही रट जब लगाने लगती है–

**औषध खाऊँ न बूटी लाऊँ, न कोई वैद बुलाऊँ।**
**पूरन वैद मिले अविनासी, वाहि को नबज दिखाऊँ।।**

अब तो साधक भगवान् के प्रेम में उन्मत्त–स्तब्ध–सा रहने लगता है। ऐसी अवस्था को प्राप्त साधक प्रभु–कृपा का पूर्ण पात्र बन जाता है, और तब साधक अपने सविता–शक्तिवाले भगवान्, सावित्री माता ही के आदेश पर आचरण करता, प्रभु–आज्ञा का पालन ही अपना जीवन–उद्देश्य समझने लगता है और प्रभु–कृपापात्र भक्त न तो दुनिया से रूठता है और न दुनिया के वैभव के पीछे पागल हो जाता है, अपितु दुनिया के सारे पदार्थों को प्रभु–आज्ञा से केवल आत्म–उत्थान के लिए प्रयोग में लाता है। धन भी कमाता है– केवल इसे मानव–जीवन–यात्रा का एक साधन समझकर। विवाह भी करता है– केवल यात्रा

शेष पृष्ठ 05 पर

## आरोग्य

शीतल जल में डाल कर सौंफ गलाओ आप।
मिश्री के संग पान करो मिटे दाह–संताप।।

फटे बिमाई या फटे मुँह, त्वचा खुर्दरी होय।
नीबू–मिश्रित आँवला सेवन से सुख होय।।

सौंफ इलायची गर्मी में, लौंग सर्दियों में खाये।
त्रिफला सदा बहार है, रोग सदैव हट जाय।।

वात–पित्त जब–जब बढ़े, पहुँचाये अतिकष्ट।
सौंठ–आँवला, दाख संग खाये पीड़ा नष्ट।।

नींबू के छिलके सुखा, बना लीजिये राख।
मिटे वमन मधु संग ले, बढ़े वैद्य की साख।।

लौंग, इलायची, चाबीये रोजाना दस पांच।
हरे श्लेष्मा कण्ठ का, रहो स्वस्थ है सांच।।

स्याह नमक हरडे मिला, खाये जो कोई रोज।
कब्ज गैस क्षण में मिटे सीधी है यह खोज।।

पत्ते नागर बेल के हरे चबाये होय।
कण्ठ साफ–सुथरा रहे, रोग भला क्यों होय।।

छल–प्रपंच से दूर हो, जनमंङ्गलकी चाह।
आत्म निरोगी जन वही गहे सत्य की राह।।

कृष्ण मोहन गोयल
113–बाजार कोट–अमरोहा

# महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज को अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में 13वें और 14वें समुल्लास की रचना क्यों करनी पड़ी

● हरिश्चन्द्र आर्य

तेरहवें समुल्लास में ईसाई मत, सृष्टि, आदम, वावेल की मीनार, अब्राहम मूर्ति पूजा, मूसा, सवाथ, चमत्कारों, ईसा के सूली पर चढ़ने एवं पुनः जीवित होने त्रित्व एवं ईसा के जीवन के विषय में चर्चा है।

चौदहवें समुल्लास में मुसलमानी मत की व्याख्या की है इसमें पवित्र कुरान, शैतान, जन्नत, (स्वर्ग), दोज़ख (नरक), पैगम्बर, काफिरों के विरुद्ध युद्ध आदि पर तर्क सम्मत चर्चा की है। इसमें कुरान की एक सौ सूरतों में से केवल बासठ की ही आलोचना की है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सत्ता में आने के बाद बहुत सारे ईसाई मिशनरी भारत में घुस आये। उन्होंने हिन्दुत्व पर आक्रमण किया, मूर्तिपूजा और जाति प्रथा का खंडन किया और लोगों को बहुत बड़ी संख्या में ईसाई बनाना शुरू कर दिया। बहुत सारे लोगों ने हिन्दू धर्म को त्यागकर ईसाई मत ग्रहण कर लिया। यद्यपि भारत में मुस्लिम शासन व्यवहार में तो 18वीं शताब्दी के मध्य में ही समाप्त हो गया था।

परन्तु एक नाम धारी तुर्क बादशाह सभी अधिकारों और वैभव से वंचित ब्रिटिश सरकार के संरक्षण में दिल्ली की गद्दी पर बैठा था। मौलवी लोगों ने राजनैतिक शक्ति से विहीन होने के बाद धर्म प्रचार की ओर ध्यान दिया और हिन्दुत्व पर चारों ओर से आक्रमण प्रारंभ कर दिया।

1845 ई. में मौलवी मुहम्मद इस्माईल को कारणी रत्नगिरी ने मो. इदरीस पुत्र अब्दुल्ला चाल भाई के द्वारा एक पुस्तक ''रद्दे हिन्दू'' प्रकाशित करायी जिसमें हिन्दुओं पर आक्रमण किया गया था। इसका उत्तर चोबे बद्री दास द्वारा ''रद्दे मुसलमान'' नाम से प्रकाशित कराया। 1852 ई. में पुनः मौलवी उबेदुल्ला (जो मूल रूप से हिन्दू था) इसका नाम अनन्तराम था। इसने (1848 ई. में इस्लाम स्वीकार कर लिया था) एक दूसरी पुस्तक ''तोह फेतुल हिन्द'' प्रकाशित करायी जिसका तीसरा संस्करण मेरठ के हाशमी प्रेस से 1860 ई. में प्रकाशित हुआ। मुरादाबाद के मुन्शी इन्द्रमणी ने इसका उत्तर ''तोहफे तुल इस्लाम'' प्रकाशित करा कर दिया।

मौलवी सैय्यद महमूद हुसैन ने इसका प्रत्युत्तर 1865 ई. में "खिलातुल हुनूद'' शीर्षक से प्रकाशित कराया। मुन्शी इन्दमणी ने इसका उत्तर 1866 ई. में ''पादशे इस्लाम'' नाम से दिया। बरेली के कुछ मुसलमानों ने कविता में एक पुस्तक प्रकाशित करायी जिसका नाम था ''मसनवी उसूले दीन हिन्दू''। इसमें हिन्दू धर्म पर घिनौने आपेक्ष लगाये गये थे। पुनः मुन्शी इन्द्रमणी ने इस पुस्तक का उत्तर पद्यात्मक पुस्तक के रूप में ही ''मसनवी दी अहमद'' 1869 ई. में प्रकाशित कराया। मुरादाबाद के एक मौलवी कुतुब आलम ने ''हिदाय तुला दीन इस्लाम'' प्रकाशित करायी। इसके बाद मुंशी इन्दमणी ने इन दोनों पुस्तकों का उत्तर ''हमले हिन्द'' और ''साम सामे हिन्द'' प्रकाशित करा कर दिया। एक पुस्तक ''सौलते हिन्द'' छपी, इसके बाद मौलाना मु. हुसैन उपनाम फकीरा ने लगभग 1873 में तेगे फ़कीर बार गर्दने शरीर (फकीर की तलवार शरारती की गर्दन पर) शीर्षक से प्रकाशित करायी।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सोचा की आक्रमणों को विफल करना अति आवश्यक है। यही संभावित पृष्ठ भूमि है स्वामी दयानन्द जी महाराज के 13वें 14वें समुल्लास को लिखने की जिससे हिन्दू, मुसलमानों एवं ईसाइयों के उन आक्रमणों से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो सके।

राष्ट्रकवि डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति के चार अध्याय पुस्तक में लिखा है कि 13वें 14वें समुल्लासों की रचना से हिन्दू आक्रमक स्थिति में हो गया है।

**अधिष्ठाता, उपदेश विभाग, प्रचार कार्यालय**
**अमरोहा, उत्तर प्रदेश**
**मो. नं. 9412322488**

# शौचं पञ्चविधं स्मृतम्

● भद्रसेन

शौच शब्द का अर्थ है– पवित्रता, सफाई, शुद्धि और इसका अभिप्राय है, अपनी तथा अपने से जुड़ी बर्ताव की वस्तुओं, बातों, वर्तावों की शुद्धि। जैसे कि अपना आपा– आत्मा, मन, इन्द्रिय, शरीर का समूह ही है[1], अतः इन सब की पवित्रता अपने आपे की पवित्रता है। इस बात को इस प्रकार से भी कह सकते हैं कि आत्मा अपने मन, नेत्र आदि इन्द्रियों और शरीर से अपने कार्य करता है। इन सब के शुद्ध होने से ही इन द्वारा किए जाने वाले कर्म, जीवन व्यवहार स्वच्छ हो सकते हैं।

इसीलिए महाभारत में कहा है कि शुद्धि के पांच रूप हैं, जैसे कि मन, व्यवहार के कार्य, रिश्ते, शरीर और वाणी आदि इन्द्रियां। क्योंकि हमारे जीवन के कार्य, व्यवहार, बातें इन सब के सहयोग से होती हैं जैसे कि हम बोलने का कार्य वाणी से करते हैं और यदा–कदा वस्त्र, बर्तन, फर्नीचर, भवन आदि वस्तुओं को बर्तकर कभी अपना कोई कार्य पूरा करते हैं, तो कभी किसी वस्तु से किसी कार्य को सिरे चढ़ाते हैं। अतः जीवन की पवित्रता के लिए सभी की शुद्धि अपेक्षित हो जाती है, अन्यथा कोई भी अशुद्ध हिस्सा जीवन को गन्दा बना सकता है।

ऐसे ही हमारे जीवन में आपस के रिश्तों का बहुत बड़ा हाथ है। हमारा जन्म, पालन, विकास जहां माता–पिता आदि सम्बन्धियों के सहयोग से ही सम्पन्न होता है, वहां भाई–बहन, पति–पत्नी, संतान आदि का सम्बन्ध भी पूरी तरह से जीवन की प्रगति से जुड़ा हुआ है। इन सम्बन्धों की सच्चाई, मिठास और परम्परागत संस्कारों से ही जीवन हरा–भरा, प्रसन्न, सुखी, विकसित होता है। तभी तो कहा है, कि पति–पत्नी का एक–दूसरे के प्रति सच्चा–सुच्चा होना ही इनका सबसे बड़ा, पहला धर्म है[2]। जब कभी इन सम्बन्धों में किसी भी रिश्ते से अपवित्रता आती है, तो जीवन में गड़बड़ सड़ान्ध आने लगती है, और तब सभी दुखी होते हैं। अतः व्यवहार की अन्य वस्तुओं की तरह परस्पर के सम्बन्धों का सम्बन्ध के अनुरूप निभाना, सच्चा–सुच्चा होना और अच्छे संस्कार भी शुद्धि का एक अंग है।

अपने शरीर, इन्द्रियों, मन और व्यवहार की वस्त्र, बर्तन, भवन आदि सभी वस्तुओं को उस–उस की शुद्धि के ढंग से शुद्ध करना चाहिए। जैसे कि मनुस्मृति में कहा है– जल से शरीर शुद्ध होता है, मन सत्य से पवित्र होता है, विद्या आत्मज्ञान तथा तप=योगाभ्यास से प्राणियों का आत्मा निखरता है तथा बुद्धि ज्ञान से विकसित होती है। मनुस्मृति के पांचवें अध्याय में भिन्न–भिन्न वस्तुओं की शुद्धि के अनेक साधन बताये हैं। हां, शरीर की शुद्धि और पुष्टि के लिए योग के आसन, प्राणायाम[4] अत्यन्त उपयोगी हैं। क्योंकि जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं के मल निकल जाते हैं, ऐसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों के मल निकल जाते हैं[5]।

सफाई न रखने से गन्दगी जहां बीमारी, कष्ट, कुरूपता का कारण बनती है, वहां गन्दगी किसी को भी अच्छी नहीं लगती और सफाई सबको अच्छी लगती है। इसलिए सभी उसको पसंद करते हैं, सफाई–स्वास्थ्य और प्रसन्नता का भी कारण बनती है। तभी तो योगदर्शन में कहा है, कि चित्त शुद्धि, मन की प्रसन्नता और एकाग्रता भी शुद्धि से आती है[6]।

इसीलिए भारतीय धर्म, संस्कृति में स्नान, जप–तप, संस्कार, यज्ञ, व्रत आदि का मुख्य भाव एवं अभिप्राय शुद्धि ही है। अतएव प्रत्येक धार्मिक कर्म से पूर्व स्नान, शुद्ध वस्त्र धारण जहाँ अनिवार्य है, वहां वह कर्म आचमन से आरम्भ होता है।

---

1. आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां योऽयं पुरुषसंज्ञकः चरक सूत्र स्थान 25, 4
2. मनः शौचं कर्मशौचं तथैव च। शरीरशौचं वाक्शौचं शौचं पञ्चविधं स्मृतम्।। महा. आश्वमेधिक APR 1.4. 32 30
3. अन्यो अन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः। एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः।। मनु. 9, 11
4. अद्भि र्गात्राणि शुध्यन्ति मनःसत्येन शुध्यति। विद्यातयोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।। 5, 109
5. दहयन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।। मनु. 6, 71
6. सत्त्वशुद्धिः सौमनस्यैकाग्र्य– योग. 2, 4

**182–शालीमार नगर**
**होशियारपुर–146001**
**पंजाब**

*शेष पृष्ठ 06 पर*

# उत्कृष्ट शङ्का समाधान

● स्वामी विवेकानन्द

**116. शंका– क्या कोई व्यक्ति दूसरे के मन को नियंत्रित करके चला सकता है? यदि हाँ, तो बिना आत्मा के प्रवेश के यह कैसे संभव है?**

समाधान– आध्यात्मिक क्षेत्र में कोई श्रद्धालु व्यक्ति अपने गुरुजी में बहुत श्रद्धा रखता है, उनके वचनों का पालन करता है, उनको आदर्श मानता है। गुरुजी जो कहते हैं, वह श्रद्धालु व्यक्ति उनको मानता है। ऐसा हो सकता है। परन्तु इस प्रक्रिया में श्रद्धालु का मन रहेगा उसी के अधीन। गुरुजी पर श्रद्धा होने के कारण, वह अपने मन को उनके निर्देशानुसार चला देगा।

इस प्रक्रिया में गुरुजी का आत्मा उनके अपने शरीर में और श्रद्धालु का आत्मा उसके अपने शरीर में ही रहेगा। दोनों आत्माएँ अलग–अलग शरीर में रहेंगी। इसी प्रकार से एक आत्मा दूसरे के मन को नियंत्रित करके कुछ–कुछ तो चला सकता है पर पूरी तरह से नहीं। क्योंकि प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है। और प्रत्येक व्यक्ति का मन पूरा–पूरा आत्मा के आधीन है, दूसरे के आधीन नहीं। जैसे सेनाधिकारी का आत्मा, सेनाधिकारी के शरीर में रहेगा, सैनिक के शरीर में नहीं घुस जाएगा। दोनों का आत्मा अलग–अलग है। दोनों का आत्मा अपने–अपने शरीर में रहेगा। केवल निर्देश से, संकेत से वो दूसरे व्यक्ति का थोड़ा सा नियंत्रण कर सकता है, लेकिन पूरा नियंत्रण नहीं कर सकता।

**117. शंका– क्या हम किसी को अपने वश में कर सकते है?**

समाधान– जी हाँ, कर तो सकते हैं, परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप किसी को अपने वश में क्यों करना चाहते हैं? अगर कोई आपको अपने वश में कर ले, तो क्या आपको ठीक लगेगा? इसलिए दूसरे को वश में करने की बात न सोचें। वैसे जो चतुर लोग होते हैं, चालाक लोग होते हैं, वे दूसरों को वश में कर लेते हैं। पर दूसरे को वश में करना अच्छी बात नहीं है। 'आत्मा' स्वभाव से स्वतंत्र है, उसको 'स्वतंत्र' ही रहने देना चाहिए।

किसी के वश में वे लोग हो सकते हैं जिनमें 'आत्मविश्वास' की कमी होती है, सेल्फ कॉन्फीडेन्स, विल पॉवर की कमी होती है। आप अपना सेल्फ कॉन्फीडेन्स बनाकर रखें। दूसरे के वश में नहीं हों और खामखां किसी को अपने वश में करने की बात भी न सोचें।

**118. शंका– माँसाहार पाप है और लाश खाने के समान है। आजकल दुनिया में अधिकांश लोगों को ऐसा करते देखते हैं, तो क्या उनको मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती?**

समाधान– आपने बिल्कुल ठीक कहा। ऐसे लोगों को मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। मांस, अंडे खाने वाले, भ्रष्टाचार करने वाले इनको किसी को मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। यम नियम में खान–पान की शुद्धि, मन की शुद्धि, अंदर–बाहर की शुद्धि, अहिंसादि, ये बातें बताई गई हैं। यह सब करना ही पड़ेगा, तभी मोक्ष होगा।

**119. शंका– क्या घर में धर्मपत्नी के साथ किया गया हवन ही ''सम्पूर्ण–यज्ञ'' कहलाता है? 'यज्ञ' करने से क्या 'लाभ' होता है?**

समाधान– पति–पत्नी दोनों को साथ में बैठकर हवन करना चाहिए। तभी यज्ञ समग्र रूप से संपन्न माना जाता है। जब घर में भोजन सभी लोग मिलकर करते हैं, तो हवन भी सभी को करना चाहिए। आजकल तो बच्चे भी घर पर ही रहते हैं। गुरुकुल में बहुत कम लोग बच्चे भेजते हैं। उनको भी हवन करना चाहिए। हर व्यक्ति को हवन करना चाहिए।

यज्ञ करने से उत्तम मनुष्य का जन्म मिलता है। जो लोग उत्तम मनुष्य बनना चाहते हैं, उन्हें यज्ञ करना अनिवार्य है। आप ईश्वर को कैसा मानते हैं, न्यायकारी या अन्यायकारी? न्यायकारी मानते हैं न। तो न्याय के कुछ नियम हैं:–

पहला नियम– अच्छे कर्म का फल अच्छा, बुरे कर्म का फल बुरा। और सबसे अच्छे कर्म का सबसे अच्छा फल।

दूसरा नियम– कर्म नहीं, तो फल नहीं।

तीसरा नियम– जो व्यक्ति कर्म करे, उसी को फल।

चौथा नियम– पहले कर्म, बाद में फल।

पाँचवाँ नियम– कर्म करेगा, तो फल अवश्य मिलेगा।

सारे प्राणियों में से सबसे अच्छा प्राणी कौन? मनुष्य। मनुष्यों में भी उत्तम कौन? अच्छे विद्वान्, धार्मिक माता–पिता के घर जन्म मिलना। तो सबसे अच्छा फल हुआ– 'उत्तम मनुष्य जन्म'। यहाँ एक बात तो पकड़ में आ गई, कि नियम कहता है कि– सबसे अच्छे कर्म का, सबसे अच्छा फल। सबसे अच्छा फल है– 'उत्तम मनुष्य जन्म'। यदि सबसे अच्छा फल प्राप्त करना हो, तो कर्म कैसा करना होगा? 'सबसे अच्छा'।

सबसे अच्छा कर्म क्या? 'यज्ञ करना।' कैसे? अच्छा तो आप ही बताइये। मैं कुछ अच्छे कर्मों का उदाहरण देता हूँ। (क) किसी को भोजन खिलाना। (ख) पानी पिलाना। (ग) वस्त्र दान करना। (घ) शुद्ध वायु देना। इनमें से सबसे अच्छा कर्म कौन सा है? शुद्ध वायु देना। शुद्ध वायु दी जाती है, यज्ञ करने से। इस प्रकार से सबसे अच्छा कर्म हुआ– यज्ञ करना। तो बात समझ में आ गई, कि अगर उत्तम मनुष्य बनना हो, तो सबसे अच्छा कर्म करना होगा। सबसे अच्छा कर्म है– यज्ञ करना। इसलिए मैंने कहा था, जो यज्ञ करेगा वो मनुष्य बनेगा। इसके अतिरिक्त मन की शुद्धि, त्याग की भावना, संगठन, अनुशासन की वृद्धि, प्रेम, बड़ों का सम्मान करने की भावना की वृद्धि इत्यादि अनेक लाभ यज्ञ करने से होते हैं।

---

☞ पृष्ठ 03 का शेष

में एक अच्छा साथी लेने के लिए। सन्तान भी उत्पन्न करता है– केवल पितृ–ऋण पूरा करने के लिए। हर प्रकार के यज्ञ भी करता है– केवल देव–ऋण पूरा करने के लिए। अपनी कमाई, अपनी शक्ति, अपनी विद्या, अपनी भक्ति का प्रयोग वैदिक विचार के प्रचार में करता है– केवल ऋषि–ऋण पूरा करने के लिए; अपने लिए कुछ नहीं।

**पागल बनकर देख–**

हाँ, अपने लिए अपना प्रियतम चुन लेता है और उसी को अपनी धारणा के विषय का ध्यान बनाकर, उसी के मिलाप का दिन–रात यत्न करता है और वेद भगवान् के पवित्र शब्दों में गाता है–

**ओं उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय।**
**अग्न उन्मादय त्वमसौ मामनुशोचतु।।**

अथर्व. 6।130।4।।

–(मरुतः) प्राणवायुओ! (उत्–मादयत) मुझे मस्ताना बना दो। (अन्तरिक्ष उत् मादय) आकाश! मुझे बेसुध कर दे। (अग्ने उत् मादय) अग्ने! तू भी मुझे प्रेमोन्मत्त कर दे। (असौ) वह (मेरा प्यारा प्रियतम प्रभु) भी (माम् अनुशोचतु) मेरे लिए विकल हो जाए! यहाँ, साधक और साध्य दोनों ही चेतन हैं, सत्य हैं, परन्तु साध्य में आनन्द विशेष है जो साधक के पास नहीं। इसी के लिए तो साधक भी तड़प रहा है और चाहता है कि उसका प्यारा भी विकल हो। काहे के लिए? अपने आनन्द का प्रसाद साधक को देने के लिए।

साधक की यह मस्ती गायत्री–मन्त्र के जप से निरन्तर बढ़ती चली जाती है, और उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि गायत्री–मन्त्र के अमर शब्दों में कोई ऐसी वस्तु छिपी हुई है जो साधक को नशा चढ़ाती चली जा रही है, और यह है भी ठीक, क्योंकि परमात्मा का पवित्र नाम एक नशा ही तो है। यजुर्वेद के 19वें अध्याय के सातवें मन्त्र में कहा भी गया है–

**सुरा त्वमसि शुष्मिणी।**

–तू बलकारी सुरा (शराब) है।

और यह ऐसी सुरा है जिसका नशा कभी उतरता ही नहीं, प्रतिदिन बढ़ता ही चला जाता है। फिर इस नशे में साधक पता नहीं क्या कुछ कह जाता है। श्रद्धेय विदेह जी के शब्दों में साधक कहता है–

**मेरा तुम ही दीन हो, ईमान हो, आराम हो।**
**तुम ही आदि–अन्त हो, जीवन की सुबह–शाम हो।।**
**आओ कि दूरी तुम्हारी अब सही जाती नहीं।**
**वेदना विरह बढ़ी इतनी कही जाती नहीं।।**

इसी विरहाग्नि को शान्त करने के लिए गायत्री–मन्त्र का जप किस प्रकार अमृत–जल सिद्ध होता है और दुनिया के सारे वैभव देकर प्रभु प्यारे से यह महामन्त्र किस प्रकार मिलाप करा देता है, कुछ रहस्य और कुछ तत्त्व इस पुस्तक में लिखने का मुझे सुअवसर प्रभु–कृपा से प्राप्त हुआ है।

मानव–जीवन को हर प्रकार से सफल बनाने में सावित्री–गायत्री एक अमोघ साधन सिद्ध हुआ है, और इसमें मनुष्य–मात्र का अधिकार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, पुरुष, सभी इसके द्वारा लाभ उठा सकते हैं। इसमें किसी सम्प्रदाय की कैद नहीं, किसी देश–विशेष या जाति–विशेष का प्रतिबन्ध नहीं; जो भी प्यासा शुद्ध जल पियेगा, उसकी पिपासा बुझेगी ही। इसी प्रकार गायत्री का अमृत–जल जो व्यक्ति विधिपूर्वक पान करेगा, वह निस्सन्देह प्रभु की कृपा का पात्र बन जाएगा। यह तथ्य सर्वथा सत्य है कि 'गायत्र्यास्तु परं जप्यं न भूतं न भविष्यति।' – गायत्री से बढ़कर कोई जप न हुआ है न होगा। यह मानव को संज्ञा–मानव बना देगा।

# ब्रह्म का मुख ब्राह्मण है

● ओम प्रकाश आर्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में 'ब्रह्म' शब्द की उत्पत्ति 'बृह बृहि वृद्धौ' इन धातुओं से होना बताया है। वे लिखते हैं– "निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम ब्रह्म है।" ऐसे ब्रह्म के आगे वे नतमस्तक हैं– "जो सबके ऊपर विराजमान, सबसे बड़ा, अनन्तबलयुक्त परमात्मा है उस ब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं।"

'ब्रह्म' शब्द की इतनी वैज्ञानिक व्याख्या किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलेगी। कण–कण में व्यापक होने से परमात्मा को 'ब्रह्म' कहा जाता है। वह सबके ऊपर है, सबसे बड़ा है, उसमें अनन्त बल है, उससे बलवान कोई नहीं है। ऐसे 'ब्रह्म' शब्द से 'ब्राह्मण' शब्द बना है। 'ब्राह्मण का सीधा सम्बन्ध 'ब्रह्म' से है। जो ब्रह्म की साधना करता है। ऐसा ब्रह्म की साधना करने वाला मनुष्य इस धरती पर सबसे श्रेष्ठ है। स्वयं वेद भगवान कहते हैं–

**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।**

**ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रोऽअजायत्।। यजु.3**

अर्थात् "जो पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सबमें मुख्य उत्तम हो वह ब्राह्मण है।"– सत्यार्थ प्रकाश।

परमात्मा की इस सुन्दर सृष्टि में मुख के समान उत्तम ब्राह्मण है। जैसे मुख इस शरीर में सबसे ऊपर है, सबसे मुख्य है, उसी प्रकार मानवजाति में सबसे उत्तम ब्राह्मण है। ऐसे उत्तम ब्राह्मण से धरती के मानव मात्र शिक्षा ग्रहण करें। भगवान मनु कहते हैं–

**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।**

**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ।। मनु. 2 । 1**

अर्थात् "इन देशों में उत्पन्न ब्राह्मण से पृथिवी के सम्पूर्ण मनुष्य अपने–अपने कामों की शिक्षा पावें।"

अवश्य ही ब्राह्मण का कर्म शिक्षा प्रदान करना है।

ब्रह्म निराकार है। वह बिना मुख के बोलता, बिना कान के सुनता, बिना आँखों के देखता, बिना पैरों के चलता, बिना हाथों के सब कुछ करता है। आखिर यह संभव कैसे है? संभव है। परमात्मा का सारा ज्ञान वेद में है। वास्तव में वेद परमात्मा की वाणी है। जब ब्राह्मण वेदमंत्र का उच्चारण करता है तब मानो ब्रह्म ही बोल रहा है। इसलिए ब्रह्म का मुख ब्राह्मण है। इसी कारण ब्राह्मण का मुख्य कार्य वेदाध्ययन है। यही कर्म उसे मोक्ष प्राप्त कराता है। भगवान मनु कहते हैं–

**वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।**

**तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम्। मनु. 4/14**

अर्थात् "अपना वेदोक्त कर्म नित्य आलस्य रहित होकर यथाशक्ति करे, क्योंकि उसको करता हुआ निश्चय परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होता है।" इस कर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। यह कर्म ब्राह्मीय है। तप पूर्ण है।

आत्मा के अन्दर व्याप्त होने के कारण परमात्मा बिना कान के सुनता, बिना आँखों के देखता है। सर्वत्र व्यापक होने के कारण मानो बिना पैर के चलता और सर्वशक्तिमान होने के कारण बिना हाथ के सब कुछ करता है। यह समस्त ज्ञान वेदाध्ययन से होता है। अतएव ब्राह्मण को वेदाध्ययन नहीं छोड़ना चहिए। भगवान मनु कहते हैं–

**योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।**

**स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।। मनु. 2/168**

अर्थात् " जो द्विज वेद.को बिना पढ़े अन्य कर्म में श्रम करें, वह जीता हुआ ही वंश के सहित शूद्रता को प्राप्त होता है।"

भगवान ने इस सृष्टि में ज्ञान में श्रेष्ठता की दृष्टि से ब्राह्मण को उच्च स्थान प्रदान किया। ब्रह्म के मुख तो है नहीं, किन्तु वेदज्ञान को ब्राह्मण ही प्रसारित करता है। अतः ब्राह्मण के कर्म भगवान मनु कहते हैं–

**अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।**

**दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।। मुन. 1/88**

अर्थात् " ब्राह्मणों के षट् कर्म पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना और दान लेना बताए हैं।" इन छह कर्मों से ब्राह्मण का जीवन सफल होता है। इन छह कर्मों को करने वाला गुण, कर्म, स्वाभावानुसार ब्राह्मण की संज्ञा प्राप्त करता है। जो वेदाध्ययन नहीं करता, उस ब्राह्मण का जीवन निष्फल है। भगवान मनु कहते हैं–

**विप्रोऽनृचोऽफलः ।। मनु. 2/158**

अर्थात् "वेदरहित ब्राह्मण निष्फल है।" इस वेदाध्ययन को नहीं त्यागना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से ब्राह्मणत्व समाप्त हो जाता है। भगवान मनु कहते हैं–

**यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।**

**यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ।। मनु. 2/15**

अर्थात् "जैसे काठ का हाथी और चमड़े का मृग है वैसे बिना पढ़े ब्राह्मण का पुत्र, ये तीनों मानमात्र को धारण करते हैं।" काठ का हाथी निष्प्राण होता है। चमड़े का मृग निष्प्राण होता है उसी प्रकार यदि ब्राह्मण का पुत्र वेद को नहीं पढ़ता है तो वह ब्राह्मण नहीं कहला सकता। वास्तव में वेद से ही ब्राह्मण का जन्म होता है। वेद और ब्राह्मण एक ही सिक्के के दो पहलू के समान हैं। भगवान मनु कहते हैं–

**मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने।**

**तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात्।। मनु. 2/169**

अर्थात् "श्रुति की आज्ञा से द्विज के प्रथम माता से जन्म, दूसरे मौञ्जी बन्धन, तीसरे यज्ञ की दीक्षा से ये तीन जन्म होते हैं।" इसमें मौञ्जी बन्धन से तात्पर्य है जब बालक मूँज की मेखला धारण कर ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरु के आश्रम में वेदाध्ययन करता था। यहाँ द्वितीय जन्म गुरु की शिक्षा से होना अभिहित है। वेदशिक्षा से ब्राह्मणत्व प्राप्त करके सारे संसार को धर्मोपदेश देने का कार्य करे। भगवान मनु कहते हैं–

**उत्तमांगोद्भवाज्जैष्ठयाद् ब्रह्मणश्चैव धारणात्।**

**सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः।। मनु 1/93**

अर्थात् "उत्तमांगोद्भव (मुख तुल्य होने) और ज्येष्ठता और वेद के धारण कराने से ब्राह्मण सम्पूर्ण जगत् का धर्म से प्रभु है।" वेद की शिक्षाओं को ब्राह्मण प्रसारित करता है। उसी शिक्षा से मानव का कल्याण होता है और मानवता का विकास होता है धरती पर सुख–शांति फैलती है। मानव सुपथ पर चलता है। अतः ब्राह्मण कर्म से प्रभु है। भगवान मनु कहते हैं–

**स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। मनु. 1/98**

अर्थात् "वह ब्राह्मण धर्मार्थ उत्पन्न हुआ है।"

**ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।। मनु. 1/97**

अर्थात् "ब्राह्मणों में अधिक विद्यायुक्त श्रेष्ठ है।"

**विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठयं ।। मनु. 2/155**

अर्थात् "ब्राह्मणों का ज्ञान की अधिकता से बड़प्पन होता है।"

विद्या, धर्म, ज्ञान इन तीनों का समन्वित रूप ब्राह्मण वर्ण है। यह सतत् प्रयास होना चाहिए कि विद्या में कमी न आवे, धर्म को त्यागा न जाए और ज्ञान प्राप्ति में निरन्तर संलग्न रहा जाए– ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्य की ये सीढ़ियाँ हैं। इस पर चढ़कर वह अन्य वर्णों को पढ़ावे। भगवान मनु कहते हैं–

**अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्थ द्विजातयः**

**प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति ।। मनु. 10। 1**

अर्थात् "अपने कर्म में स्थित द्विजाति (ब्राह्मणादि) तीन वर्ण (वेद) पढ़ें और ब्राह्मण इनको पढ़ावे।" जब ज्ञानी ज्ञान से संसार को मार्ग दिखाते हैं तभी संसार प्रकाशित होता है। इसी ज्ञान के प्रकाश के लिए भगवान (सृष्टिकर्ता) ने ब्राह्मण को मुख का कार्य दिया। मनु कहते हैं–

**लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः।**

**ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्।। मनु. 1/31**

अर्थात् "लोकों की वृद्धि के लिए मुख–ब्राह्मण, बाहू–क्षत्रिय, ऊरू–वैश्य, पाद–शूद्र (इस क्रम से सृष्टिकर्ता ने) उत्पन्न किए।" इस दृष्टि से ब्राह्मण का कार्य मुख का है, क्षत्रिय का कार्य बाँहो का है, वैश्य का कार्य पेट का है और शूद्र का कार्य पैरों का है। वास्तव में कर्माधारित वर्णव्यवस्था गुरुकुलों में निर्धारित की जाती थी। ब्रह्मण गुण, कर्म, स्वभाव से होता है जन्म से नहीं।

आज भी मानव–समाज कर्म से ही चल रहा है। शिक्षा जगत्, रक्षा जगत्, व्यापार जगत्, सर्वहारा जगत् इसी का एक परिष्कृत रूप है। इन चारों में शिक्षा से ही राष्ट्र का निर्माण सभी स्वीकार करते हैं। भगवान मनु कहते हैं–

**ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते।। मनु. 1/99**

अर्थात् "ब्रह्मण का उत्पन्न होना हि पृथ्वी में श्रेष्ठ होता है।"

अतः ब्राह्मण ब्रह्म का मानो मुख है। समाज का नेत्र है।

आर्यसमाज
रावतभाटा वाया कोटा

# दयानन्द साहित्य की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

● प्रचेतस्

स्वामीजी के समग्र साहित्य की पृष्ठभूमि में स्वामीजी का निरन्तर गतिशील जीवन है। जीवन की यह गतिशीलता उनके सतत चिन्तन, गम्भीर स्वाध्याय, लोक जीवन की समस्याओं, दुर्बलताओं तथा पीड़ा और परितापों के पर्यवेक्षण से सार्थक और सोद्देश्य जनजीवन का समाधान ढूंढ़ती है। उनके व्यक्तित्व के कुछ अंग स्थायी हैं तो कुछ परिवर्तनशील। शैव–ब्राह्मण परिवार की कुलीनता जो जीवन की आचारमूलक पवित्रता की भित्ति है। वैचारिक दृढ़ता इस मायने में कि यदि पर्याप्त परीक्षा के बाद कोई सिद्धान्त और तथ्य निर्णीत हो गया या समझ में आ गया तो उस पर दृढ़ता से टिके रहना। विषय–वासनाओं से पूर्ण वैराग्य उनकी जन्मजात प्रवृत्ति थी जो उनके चरित्र को आजीवन निष्कलंक बनाती है। स्वामीजी के जीवन में आये विभिन्न मोड़ पर यदि हम सूक्ष्मता से विचार करें तो उनके समग्र लेखन की पृष्ठभूमि के सूत्र स्पष्ट हो जायेंगे। शिवरात्रि की घटना से उनके बाल–मन में ईश्वर की स्थूल और लोक–प्रचलित पूजा–पद्धति से उनकी निवृत्ति हो गई। इस घटना ने सच्चे जिज्ञासु बनकर वस्तुतः ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप और उसकी प्राप्ति के सच्चे मार्ग के अन्वेषण के लिए प्रेरित किया। आज से पौने दो सौ वर्ष पूर्व के भारत में 20–21 वर्ष तक अविवाहित रहना एक कठिन स्थिति थी। किन्तु बहिन और चाचा की मृत्यु ने उनके पूर्वजन्मार्जित वैराग्यभाव को और अधिक उद्दीप्त कर दिया जिसके कारण वे अपने विवाह को टालते रहे, पास के गांव में पण्डित से शास्त्राध्ययन अर्थात् व्याकरण–मीमांसा और कर्मकाण्ड के ग्रन्थ पढ़ने में समय बिताते रहे और जब यह समझ में आया कि अब बिना विवाह किये माता–पिता और परिवारी जन नहीं मानेंगे तब घर का त्याग कर दिया। भारतीय दर्शनशास्त्र (विशेषतः योगदर्शन) यह बतलाता है कि विषय–वासना से पराङ्मुखता का संस्कार विरले ही लोगों को होता है। 'कारणवैराग्य' भी कुछ ही लोगों को होता है। किन्तु जन्मतः वैराग्य (ज्ञान–वैराग्य) का संस्कार लाखों लोगों में एकाध का होता है। शंकराचार्य के बाद दयानन्द सरस्वती इसके अप्रितम उदाहरण हैं। काम पर विजय प्राप्त करने वाले कुछ व्यक्ति भी अर्थलोलुप देखे गये हैं। सांसारिक धन–सम्पत्ति तथा राज ऐश्वर्य के प्रति भी पूर्ण विरक्ति स्वामीजी के जीवन में दिखलाई पड़ती है। पिता की सम्पत्ति के त्याग देने के साथ ही घर से पलायन के कुछ ही दिन बाद मार्ग में ढोंगी साधुओं द्वारा बहुमूल्य सुवर्ण की अंगूठियां–आभूषण, रेशमी छोती को दे देना ओखी मठ की सम्पत्ति और कालान्तर में उदय पुर के एकलिंग महादेव की गद्दी ठुकराना उनकी सांसारिक वैभव के प्रति अनन्य अनासक्ति का उदाहरण हैं। '**अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते**' (2/13) मनु की यह उक्ति और उदात्त भावभूमि स्वामी दयानन्द जी पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। इसी प्रकार स्वामी जी के 'आत्मचरित' के कुछ प्रसंग और भी हैं। जो उल्लेखनीय और उनके ग्रन्थों के और उनके वैचारिक धरातल को उजागर करते हैं– 1912 में टिहरी में उन्हें हिन्दुओं में प्रचलित क्रूर प्रथाओं और धर्म का विकृत स्वरूप देखने को मिला। तांत्रिक क्रियाओं वाले एक पण्डित के घर भोजनार्थ आमंत्रित स्वामीजी ने वहाँ बकरे की खाल, मांस और उसका कटा हुआ शिर देखा। यह दृश्य देखकर उनका हृदय वितृष्णा से भर उठा। उन्होंने भोजन करने से इन्कार कर दिया और उलटे पाँव लौट आये। उन्हें आश्चर्य हुआ कि एक तंत्र विद्या का ज्ञाता पण्डित स्वयं भी मांस खाता, काटता और पकाता है तथा संन्यासी की आवभगत में ऐसा करना आह्लादकर मानता है। उसे इस नृशंसतापूर्ण हिंसाकार्य में कोई अधर्म और पाप की भावना भी प्रतीत नहीं होती। स्वामीजी ने टिहरी से तन्त्र, व्याकरण, साहित्य और ज्योतिष के ग्रन्थ भी प्राप्त किये। व्याकरण और ज्योतिष के ग्रन्थ में कुछ खास नहीं था। तन्त्रग्रन्थों को देखने और पढ़ने का स्वामाजी का यह पहला अवसर था। तंत्र साहित्य को देखा तो स्वामीजी स्तब्ध रह गये। उसमें नग्न व्यभिचार भरा पड़ा था। स्वामीजी लिखते हैं– 'मैंने देखे तो बहुत भ्रष्टाचार की बातें उनमें देखीं कि माता, कन्या, नग्न करके पूजना। मद्य, मांस, मच्छी, मुद्रा अर्थात् ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त एकत्र भेजन करना और उक्त स्त्रियों से मैथुन करना। इन पाँच मकारों से मुक्ति का होना आदि लेख उनमें देख के चित्त को खेद हुआ कि जिसने ये ग्रन्थ बनाये हैं, वे कैसे नष्टबुद्धि थे।'[i] *(दयान्द सरस्वती–आत्मकथा, पृष्ठ 12)*

एक दूसरा प्रसंग भी संवत् 1812 की समाप्ति के समय का है। द्रोण सागर से दयानन्द सम्भल होते हुए मुरादाबाद की ओर चले। गढ़मुक्तेश्वर में वह गंगा तट पर पहुँचे। यहाँ उन्होंने अभी तक जो ग्रन्थ इकट्ठे किये थे, उनका अध्ययन किया। इनमें से एक दो ग्रन्थों की शिनाख्त कर पाना कठिन है। शिवसन्ध्या, हठयोगप्रदीपिका, घेरण्डसंहिता आदि पुस्तकों को वे यात्रा में पढ़ते रहते थे। इन पुस्तकों में वर्णित नाड़ी चक्र के लम्बे–चौड़े विवरण की सत्यता को जांचने और परखने का अवसर उन्हें अभी तक नहीं प्राप्त हुआ था। स्वामीजी लिखते हैं कि "एक दिन दैवसंयोग से एक शव मुझे नदी में बहता हुआ मिला। तब समुचित अवसर प्राप्त हुआ कि मैं उसकी परीक्षा करता और अपने मन में इन पुस्तकों के सम्बंध में जो विचार उत्पन्न हो चुके थे, उनका निर्णय करता। सो उन पुस्तकों को जो मेरे पास थीं, समीप एक ओर रख कर वस्त्रों को ऊपर उठा मैं नदी के भीतर गया और शीघ्र वहाँ से शव को पकड़ तट पर आया। मैंने एक तीक्ष्ण चाकू से जैसा हो सका उसे यथायोग्य काटना प्रारभ किया और हृदय को उसमें से निकाल लिया और ध्यानपूर्वक देख परीक्षा की। अब पुस्तकोल्लिखित वर्णन की उससे तुलना करने लगा। ऐसे ही शिर और ग्रीवा के अंगों को काटकर सामने रखा। यह निश्चय करके कि दोनों अर्थात् पुस्तक और शव लेशमात्र भी परस्पर नहीं मिलते, मैंने पुस्तकों को फाड़कर उनके टुकड़े कर डाले और शव को फेंक साथ ही पुस्तकों के टुकडों को भी नदी में फेंक दिया। उसी समय से शनैः–शनैः यह परिणाम निकलता गया कि वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल और सांख्य शास्त्र के अतिरिक्त अन्य समस्त पुस्तकें जो विज्ञान और विद्या पर लिखी गईं, मिथ्या और अशुद्ध हैं।"[ii] *वही, पृष्ठ 16, 17।*

"यह घटना दयानन्द के ज्ञान और अनुसंधान के प्रति उनकी गहरी निष्ठा का प्रमाण है। किसी संन्यासी के लिए जीवित मनुष्य के साथ शरीर सम्पर्क दोष माना जाता है, और किसी शव का स्पर्श तो वह किसी भी कीमत पर नहीं कर सकता। किन्तु दयानन्द ने स्वेच्छा से शव का स्पर्श ही नहीं उसकी चीर–फाड़ करके उसका अध्ययन तक किया था, जिससे पता चलता है कि ज्ञान कोरी भावुकता से कहीं अधिक बड़ी चीज है। सच्चे वैज्ञानिक तथा चिन्तक ऐसे ही होते हैं।"[iii] *(धनपति पाण्डेय, आधुनिक भारत के निर्माता : स्वामी दयानन्द सरस्वती, पृष्ठ 28।)*

स्वामीजी के जीवन के उक्त दो प्रसंग यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि उनके ग्रन्थों में वाममार्गी या तन्त्रमार्ग सम्मत अनैतिक और अश्लील धार्मिक क्रिया–कलापों को किंचित स्वीकृति भी नहीं मिली। अपितु पूरे प्रबल वेग से स्वामीजी ने खण्डन के खड्ग से उसे निर्मूल करने में पूरी शक्ति लगायी। तन्त्र साहित्य में गुह्य साधना का जो वर्णन था, वह तन्त्र–साहित्य वाममार्ग तक ही सीमित नहीं रहा अपितु बौद्धों के महायान से होते हुए हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के रसिक सम्प्रदाय में ही नहीं, अपितु सगुण मार्ग के कृष्णाश्रयी शाखा के भक्त कवियों में राधा और कृष्ण नाम पर अतिश्रृंगारपरक रचनाओं में दिखाई पड़ता है। पं. रामचन्द्र शुक्ल ने राधा–कृष्ण की श्रृंगारपरक रचनाओं की अनुकृति में राम–काव्य में भी ऐसी प्रवृत्ति पर अपनी चिन्ता प्रकट की और इसे सर्वथा हेय घोषित किया है।

स्वामीजी द्वारा पुराणों पर प्रबल प्रहार का प्रमुख कारण यह रहा है कि उन्होंने स्पष्टतः यह अनुभव कर लिया था कि वेद–उपनिषद्, योग–दर्शन और वेदान्त सूत्रों में जो ईश्वर का स्वरूप वर्णित है, वह अज–अकाय–अजन्मा–निराकार–सर्वव्यापकत्व से अभिमण्डित है, वह ईश्वर साकार, अवतार और लीलाहारी नहीं है। पातंजल योग–दर्शन का अष्टांग मार्ग (यम–नियम–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान और समाधि) ही उसकी उपासना की पद्धति है। सामान्य ग्रहस्थियों के लिए ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, भजन, पूजा, सन्ध्या, वन्दनादि के लिए भी ऋषियो ने ओंकार (प्रणव), गायत्री मन्त्र के जप तथा सन्ध्यावन्दन हेतु वैदिक ऋचाओं के उपयोगी मन्त्र विनियुक्त किये हैं। अतः स्वामी दयानन्द ने पञ्चमहाज्ञविधि 'सन्ध्या और संस्कारविधि' प्रभृति ग्रन्थों में परम्परा प्राप्त ओंकार (प्रणव), गायत्री मन्त्र का उच्चारण जप तथा सन्ध्या की विधि लिखी है जिसमें पूर्वाचार्यों वैदिकों के समान अंगस्पर्श, मार्जन, अघमर्षण, उपस्थानादि कर्मों का प्रयोग है। ईश्वर की मूर्ति या विग्रहवती देवताओं की अर्चना–पद्धति और औपनिषदिक ही नहीं दर्शनकारों द्वारा भी अभिमत नहीं है। स्वामीजी के इस निष्कर्ष की पुष्टि हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के इस कथन से भी होती है– "वाममार्ग के बढ़ते हुए प्रभाव को परवर्त्ती पुराणों में प्रकारान्तर से स्वीकार कर लिया गया है। विशेष रूप से श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि में 'कृष्ण' के साथ 'गोपी रतिविहार' का समूचा 'पैटर्न' तांत्रिक है। वाममार्ग का मर्म 'रागसाधना' है, अर्थात् राग के माध्यम से परमतत्त्व की प्राप्ति होनी चाहिए जबकि षड्दर्शनों में सर्वत्र 'रागदमन' का उपदेश दिया गया है। वाममार्गी योग पतंजलि के योगशास्त्र से भिन्न है।"[iv] *(विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, मध्यकालीन हिन्दी काव्य की तांत्रिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 12।)*

यही कारण है कि स्वामी दयानन्द की पुस्तक –भागवतखण्डन' शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण, वेदविरुद्धमतखण्डनम (बल्लभाचार्यमतखण्डन) तथा सत्यार्थ प्रकाश में भी पौराणिक धर्म, उसकी कथित साकारोपासना और राधा कृष्ण के श्रृंगारपरक भक्ति का जोरदार खंडन मिलता है। इसके अतिरिक्त ऋषि दयानन्द को अपने मथुरा प्रवास के काल में वैष्णव सम्प्रदाय के आचार–विचार, व्यवहार, सिद्धान्त और रीति–नीति को निकट से देखने का अवसर मिला, इस कारण भी इनकी भक्ति के नाम पर अन्दर की लीला के स्वामीजी विरोधी हो गये। डॉ. जॉर्डन्स के इस निष्कर्ष से भी असहमत होने का कोई प्रश्न नहीं है।[v] *(भवानीलाल भारतीय, स्वामी दयानन्द परिश्रम की दृष्टि में, पृष्ठ 196।)*

दयानन्द की विशेषता इसी बात में है कि उन्होंने अपने धर्मान्दोलन का आधार 'वेदप्रामाण्य' को बनाया। इससे उन्हें जो लाभ मिले, वे स्पष्ट हैं। पुराण,

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

☞ पृष्ठ 07 का शेष

# दयानन्द साहित्य की...

तन्त्र तथा परवर्ती संस्कृत–ग्रन्थों में जो युक्ति तथा तर्कविरुद्ध संकीर्ण बातें भरी पड़ी थीं, उनसे उन्हें सहज ही छुट्टी मिल गई। जबकि शास्त्रप्रमाणवाद को दृढ़ता से लागू न कर सकने वाले विवेकानन्द आदि को तन्त्रों और पुराणों की आपत्तिजनक बातों को भी Defend करने के लिए नाना प्रकार की क्लिष्ट कल्पनाएं और द्राविड़ प्राणायाम करने पड़े।[vi] *(वही, पृष्ठ 199–200।)* मध्ययुगीन निवृत्तिवाद तथा मिथ्या वैराग्यवाद से उत्पन्न अकर्मण्यता से भारतीय समाज को मुक्त कर कर्मठता का पाठ पढ़ाने में दयानन्द अग्रगण्य रहे। कर्मफलवाद को भी दयानन्द ने दृढ़ता से प्रतिष्ठित किया।

स्वामी दयानन्द की समस्त रचनाओं में अनुस्यूत वेद–प्रामाण्य आर्य जाति के मौलिक और सर्वप्राचीन वेदों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। आधुनिक युग के राजा राममोहनराय के धार्मिक मन्तव्यों के उत्स उपनिषद् या मध्ययुगीन दार्शनिक शंकर, रामानुज, मध्व, निम्बार्क और बल्लभ–आचार्यों के प्रस्थानत्रयी में अग्रगण्य उपनिषद् के मूल भी वैदिक संहिताएँ ही हैं। सैकड़ों मौजूद उपनिषदों के मध्य मौलिक और प्रामाणिक उपनिषद् का आधार भी तो वेद ही है। अर्थात् परवर्ती, साम्प्रदायिक उपनिषदें किसी भी वेद की शाखा से सम्बद्ध नहीं है, अतः वेद से सर्वथा असम्बद्ध उपनिषदें उपनिषद् संज्ञा से ही अभिहित नहीं की जा सकतीं। अतः उपनिषदों के भी मूल वेद की ओर दृष्टि निक्षेप तो दयानन्द ने ही किया। इतना ही नहीं कि दयानन्द का वेदभाष्य इस महत्वपूर्ण ज्ञान–स्रोत को मानव–मात्र के लिए उपलब्ध कराता है, इसी भाष्य ने वेद को विश्व मानवता के लिए एक अपूर्व उपहार के रूप में प्रस्तुत किया है, कारण कि दयानन्द कृत भाष्य ही वेद को मध्यकालीन भाष्यकारों की संकीर्ण, साम्प्रदायिक तथा रूढ़िग्रस्त व्याख्याओं से मुक्त कर सार्वभौम मानवता की विशद भूमिका पर प्रतिष्ठित करने में सफल हुआ है। प्रो. जार्डन्स के शब्दों में ''ब्राह्मणों के वर्चस्व में फँसे वेद के द्वार हिन्दूमात्र के लिए खोल देना स्वामी जी की महानतम देन थी"।[vii] *(जे. टी. एफ. जार्डन्स, दयानन्द सरस्वती : हिज लाइफ आइडियाज, अध्याय–11, पृष्ठ 274।)*

स्वामी जी सं. 1920 वैशाख के अन्त में मथुरा में शिक्षा–प्राप्ति के पश्चात् आगरा की ओर गये। आगरा में लगभग 2 वर्ष रहे। इस काल में समय–समय पर पत्र द्वारा अथवा स्वयं मिलकर स्वामी विरजानन्दजी से स्वामी दयानन्द अपने सन्देह निवृत कर लिया करते थे। स्वामी विरजानन्दजी से किस प्रकार के अपने शास्त्रीय सन्देह को निवृत्त किया, इसका विवरण नहीं मिलता। स्वामीजी की लिखी प्रारम्भिक पुस्तक 'भागवतखण्डन' है। इस पुस्तक के अन्त में 1913 विक्रमी दूसरा ज्येष्ठ वदी 1 (अर्थात् 7 जून 1866 बहस्पतिवार) का उल्लेख है। कृष्णभागवत का खण्डन स्वामी विरजानन्दजी भी करते थे। पूना व्याख्यान में स्वामीजी कहते हैं–''विरजानन्द स्वामी.... भागवत आदि पुराणों का तो बहुत ही तिरस्कार करते थे।"[viii] *(भवानीलाल भारतीय (सम्पादक ), महर्षि दयानन्द सरस्वती की आत्मकथा, पृष्ठ 68, 69।)*

मूर्त्तिपूजा में विश्वास तो स्वामी दयानन्द को मथुरावास के दिनों में भी नहीं था। क्योंकि स्वामीजी के सहाध्यायी पं. युगलकिशोर जी ने पं. लेखरामजी से कहा था कि 'एक दिन विद्यार्थी अवस्था में ही हमसे स्पष्ट कर दिया कि मूर्त्तिपूजा, कण्ठी, तिलक, छाप सब वर्जित है।'[ix] *(लेखराम–महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र (उर्दू), पृष्ठ 27।)* कृष्ण भागवत का खुले रूप में खण्डन स्वामीजी ने आगरावास से आरम्भ कर दिया। भागवतखण्डन पुस्तक में देवीभागवत, हरिवंशपुराण आदि का नामोल्लेख जिस रूप में हुआ है उससे यह स्पष्ट है कि संवत् 1923 वि. के प्रारम्भ तक स्वामी दयानन्द श्रीमद्‌भागवत के अतिरिक्त दूसरे पुराणों को परम्परागत विश्वास के कारण श्रवण मात्र से ही प्रामाणिक मानते थे।[x] *(देवीभागवतं श्रीमद्भागवतमस्ति व्यासकृतञ्च नान्यत्। कुत एतत्। शुद्धत्वाद् वेदादिभ्योऽविरुद्धत्वाच्च। अत एव देवीभागवतस्य श्रीमद्भागवतसंज्ञा नान्यस्य च भागवतस्य। कुत एतत्। अशुद्धत्वात् प्रमत्तगीतत्वाच्च.........वेदोपवेदवेदाङ्गमनुस्मृति–महाभारत–हरिवंशपुराणानां वाल्मीकिनिर्मितस्य रामायणस्य चाध्यापनमध्ययनं कर्त्तव्यं कारयितव्यं च {युधिष्ठिर मीमांसक, दयानन्दीय लघु ग्रन्थ सग्रह (भागवत खण्डनम्) पृष्ठ 465, 485})* भागवत–खण्डनम् के रचनाकाल (1923 वि.) तक स्वामीजी मूर्तिपूजा के साथ–साथ 'चक्र आदि से शरीर के दागने, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक और काठ (तुलसी आदि) की माला धारण करने, गरम चक्र आदि से मुद्रा करने (तप्तमुद्रोर्ध्वपुण्ड्रादि) का भी खण्डन करते थे, उनकी इसी पुस्तक (भागवत–खण्डनम्) से यही भी विदित होता है।

इसके कुछ दिन पश्चात् ही (सम्भवतः एकाध वर्ष के अनन्तर ही) स्वामीजी ने वर्तमान सभी पुराणों का खण्डन आरम्भ कर दिया। संवत् 1926 वि. में स्वामीजी की ओर से कानपुर में प्रामणिक ग्रन्थों का जो विज्ञापन दिया गया, उसमें पुराणों का नाम नहीं है। इस पवित्र भारतभूमि पर जो भी धर्माचार्य मूर्तिपूजा के खण्डन में अग्रसर होगा, उसे पुराणों का परित्याग करना ही पड़ेगा। पुराणों में घुणाक्षर न्याय से कही बातें सच्ची मानकर भी ऋषि दयानन्द सरस्वती को इनका खण्डन करना ही पड़ा।[xi] *(सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास, पुराणखण्डनप्रकरण।)* पुराण ही मूर्तिपूजा का मूल है। स्वामीजी की असाधारण दृष्टि और उनके सूक्ष्म अध्ययन ने सहसा देख लिया कि मूर्तिपूजा और वेदविरुद्ध समस्त सम्प्रदायों का मूल वर्त्तमान पुराण ग्रन्थ ही हैं।[xii] *(ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, भगवद्दत्तलिखित, भूमिका, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ 50।)* 'भागवतखण्डनम्' में उपर्युक्त प्रसङ्गों का उल्लेख इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इससे हमें यह विदित होता है कि स्वामीजी के जीवन में विचारधारा का विकास कैसे हुआ।

जब श्री स्वामीजी मथुरा से पढ़कर निकले तो वे कतिपय पुराणों को मानते थे। इन पुराणों का अध्ययन करने और उनका वेद से गम्भीर सन्तोलन करने पर उन्हें पता लगा कि वर्त्तमान पुराण ऋषियों द्वारा प्रयुक्त किये पुराण शब्द के अन्तर्गत नहीं आ सकते। इन वर्तमान पुराणों का संकलन गत दो तीन सहस्त्र वर्षों में ही हुआ है। अतः इनमें अधिकांश बातें उन्हें वेदविरुद्ध दिखाई दीं। उस काल में पण्डित लोग इन वेदविरुद्ध बातों को पुराणों से ही सिद्ध करते थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती इस बात को सह नहीं सके और उन्होंने इन पुराणों का सर्वथा परित्याग कर दिया।[xiii] *(वही, पृष्ठ 50–51)*

दयानन्द यथार्थवादी दार्शनिक थे। उन्होंने विश्वप्रपञ्च की सन्तोषप्रद वैज्ञानिक व्याख्या में ईश्वर (ब्रह्म), जीवात्मा और प्रकृति की अनादि सत्ताओं को स्वीकार किया। किन्तु दयानन्द की यह दार्शनिक दृष्टि उनके अनवरत चिन्तन–मनन तथा वेदाध्ययन का परिणाम है। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण (1875 ई.) के प्रकाशित होने के समय तक उक्त तीन नित्य अनादि सत्ताओं का स्पष्ट विचार उनके समक्ष नहीं था। यद्यपि वे शंकराचार्य के मायावाद और ब्रह्म–जीवैक्यवाद से किनारा कर चुके थे तथापि प्रकृति को सृष्टि का स्वतन्त्र उपादानकारण मानने से वे अभी दूर थे। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण में वे परमात्मा को सृष्टि का उपादान, निमित्त तथा साधारण कारण स्वीकार करते हैं।[xiv] *(वेदादि की श्रुतियों से यह निश्चित जाना जाता है कि एक अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर ही सनातन था और जगत् लेशमात्र भी नहीं था।.... इससे क्या आया कि भिन्न पदार्थ को नहीं लेके जगत् के रचने से उपादान कारण जगत् का परमेश्वर ही हुआ, क्योंकि अपने से भिन्न दूसरा कोई पदार्थ नहीं है कि जिसे लेके जगत् को रचे, सो अपने स्वाभाविक सामर्थ्य गुणरूप से जगत् को रचा। इससे सब जगत् का उपादान कारण परमेश्वर ही है {सत्यार्थ प्रकाश (प्रथम संस्करण), अष्टम समुल्लास})*

किन्तु सत्यार्थप्रकाश के संशोधित द्वितीय संस्करण में स्पष्टतः वे परमेश्वर, जीव और प्रकृति को जगत् के तीन अनादि कारण के रूप में मानते हैं।[xv] *(यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है, वा अन्य से?*

*उत्तर – निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है। परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है।*

*क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की?*

*उत्तर – नहीं। वह अनादि है।*

*– अनादि किसको कहते, और कितने पदार्थ अनादि हैं?*

*उत्तर – {जिसका आदि कोई कारण वा समय न हो इसको अनादि कहते है।} ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं।...... जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्नस्वरूप {है। ये} तीनों अनादि हैं।'*

*सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समुल्लास, पृष्ठ 324–325।*

*युधिष्ठिर मीमांसक सम्पादित, आर्यसमाज–शताब्दी–संस्करण।)* इसकी पुष्टि में ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा श्वेताश्वतर–उपनिषद् के प्रमाणों को भी उन्होंने अर्थसहित उपस्थित किया है।

इसी प्रकार मुक्ति से पुनरावृत्ति का सिद्धान्त स्वामीजी ने 1935 वि. संवत् या 1936 वि. सं. में निश्चित किया था। क्योंकि इसके पूर्व आर्याभिविनय (1932 वि.), आर्योद्देश्यरत्नमाला (1934 वि.) पञ्चमहायज्ञविधि (1934 वि.) से 'मुक्त जीव जन्ममरणरहित' हो जाता है ऐसा प्रतीत होता है। 20 जून 1880 ई. रविवार को स्वामी जी का 'मुक्ति' विषय पर फर्रुखाबाद आर्यसमाज में महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुआ। जिसमें स्वामी जी ने मुक्ति से पुनरावृत्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया और एतदर्थ सांख्यसूत्र 1/159 'इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः' को प्रमाणरूप में उद्‌धृत कर उसकी व्याख्या की। तदनन्तर स्वामीजी का यह निश्चय 'संस्कृतवाक्यप्रबोध' तथा 'सत्यार्थप्रकाश' के द्वितीय संस्करण में स्पष्टता से विस्तारपूर्वक प्रतिपादित किया गया।[xvi] *(विस्तारपूर्वक जानने के लिए द्रष्टव्य–युधिष्ठिर मीमांसक, ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रंथों का इतिहास (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ 14–99 तक।)*

निष्कर्षतः यह मानना पड़ेगा कि स्वामीजी ने अपने सिद्धान्तों के निर्णय में या उन्हें वर्तमान स्वरूप देने में किसी से परामर्श नहीं किया। ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में किसी सिद्धान्त का निर्णय उस व्यक्ति का निर्णय होता है, उसमें मतदान या जनतांत्रिक प्रणाली का कोई योगदान होता ही नहीं। जनतांत्रिक निर्णय और सैद्धान्तिक सत्य में यह बड़ा अन्तर है।

जो लोग यह समझते है कि स्वामी दयानन्द के समस्त सैद्धान्तिक निष्कर्ष उनके गुरु, दण्डी स्वामी विरजानन्द की देन है, वह ठीक नहीं है। क्योंकि आर्ष–अनार्ष का विवेक तो गुरु ने अवश्य दिया था किन्तु समग्र वेद का अध्ययन और मनन करके अनार्ष ग्रन्थों का अनादर कर आर्ष (ऋषियों के) ग्रंथों की सहायता से सिद्धान्त–निर्णय का कार्य स्वयं स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया था क्योंकि स्वामी दयानन्द जी का अपने गुरु से सम्पर्क 1860 ई. में हुआ और 14 सितम्बर 1868 ई. को दण्डी स्वामी विरजानन्द की मृत्यु हो गई। सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण की रचना 1874 ई. में हुई और स्वामीजी के विचार इसके बाद भी बदलते रहे। स्पष्ट है कि दयानन्द ने अपने मन्तव्यों का स्वयं निर्धारण किया, और स्वयं ही उन्होंने उसमें शनैः–शनैः विकास के क्रम से यथावश्यक परिवर्तन भी किये।

**शोध–छात्र,**
**उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय,**
**हरिद्वार**

# सुमनसः स्याम

● पण्डित वेदप्रकाश शास्त्री

यज्ञ के पश्चात् यजमान पर पुष्पवर्षा करके उसे आशीर्वाद देते हैं। पुष्प जैसा कोमल, सुन्दर, प्रसन्न और दीर्घायु होने की कामना करते हैं। पुष्प को सुमन भी कहते हैं। आइए, 'सुमन' पर विचार करें।

सुमन शब्द संस्कृत के 'सुमनस्' से बना है। सु+मनस् = सुमनस् = सुमन। जिसका अर्थ है– सुन्दर, स्वच्छ, निर्मल मन, पुष्प।

अतः वेद कहता है–

**सुमनसः स्याम।।** ऋ. 6/52/5

हम सदैव सुमन अर्थात् सुन्दर मन वाले होवें। हमारा मन अच्छा हो। हम स्वच्छ और निर्मल बन जाएं। जैसे पुष्प खिला हुआ होता है, वैसे ही हमारा मुख भी प्रसन्नता से खिला हुआ हो। हम प्रसन्नचित्त दृष्टिगोचर हों। ऐसा तभी सम्भव है जब हमारा मन अच्छे संकल्पों वाला होगा। वेद कहता है–

**मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।**

यजु. 34/1

मेरा मन अच्छे संकल्पों अर्थात् शुभ विचारों वाला हो। बन सका तो जीवन व्यर्थ है। अतः वेदवाणी प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति में 'सुमन' बने रहने का सन्देश देती है।

हमारा कर्तव्य है कि हम पुष्प के गुणों को धारण कर अपने मन को सुन्दर और श्रेष्ठ बनाएं। इसके लिए पुष्प की विशेषताओं पर विचार करना होगा–

सुगन्धि का विवरण – पुष्प सुगन्धि को चहुंदिश बिखेर देता है। कभी अपने पास नहीं रखता। पुष्प के पास से निकलने वाले व्यक्ति का मन स्वयमेव पुष्प की सुगन्धि की ओर आकर्षित हो जाता है। ऐसे ही मनुष्य भी अपने सद्‌गुणों और सत्कर्त्तव्यों के द्वारा प्राणियों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। जैसे पुष्प सुगन्धि बिखरेता है वैसे ही मनुष्य सद्‌गुणों को बांटता है।

समर्पण – पुष्प अपना सर्वस्व परोपकारार्थ समर्पण कर देता है। अपने लिए कुछ भी सचय नहीं करता। मानव शरीर की सार्थकता परोपकार के लिए समर्पण में है–

**परोपकारेण विभाति कायः।।**

शरीर की शोभा परोपकार से है।

माखनलाल चतुर्वेदी ने 'पुष्प की अभिलाषा' को इस प्रकार व्यक्त किया है–

**मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर तुम देना फेंक।**
**मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।।**

जहां बलिदानी वीरों के पैरों के नीचे आने पर स्वयं को पुष्प धन्य एवं सौभाग्यशाली मानता है, वहां शुभाशीष की वर्षा करके यजमानों को सौभाग्य, सुख, समृद्धि, प्रसन्नता, उत्साह एवं दीर्घायु की कामना भी करता है।

सुमन=पुष्प का सुन्दर मन को सन्देश है – सदैव परोपकार करके जीवन सार्थक बनाओ। शत्रु–मित्र सभी के प्रति समता की भावना रखो। सुगन्धि, मधु–रस अपना सर्वस्व दान करने के पश्चात् भी खिला हुआ पुष्प मनुष्य को प्रसन्नतापूर्वक सर्वस्व समर्पण की प्रेरणा देता है। औषधि में मिलकर कल्याण करता है। हवन सामग्री के साथ मिलकर स्वयं को अग्नि की भेंट चढ़ाकर जनकल्याण हेतु वातावरण को शुद्ध, पवित्र, सुगन्धित बना देता है, साथ ही वर्षा में सहायता बनता है।

इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर मनुष्य अपने मन से कहने लगता है–

**हे मन तू बन फूल समान।**
**मधुदाता बन सबका प्यारा, तजकर मेदविद्दान।।**

मन को सुमन बनाने हेतु ध्यातव्य तथ्यः–

1. हमारे अन्दर पुष्पवत् कोमलता एवं सरतला हो।
2. मानसिक शान्ति एवं तनाव से मुक्ति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहें।
3. अनन्यता–शान्तचित्त की विशेषता है। निश्चल मन में कोई अन्य अर्थात् परायापन–भेदभाव की भावना रहती ही नहीं। यथा–

श्रीराम वन में भीलनी के बेर खाकर भी प्रसन्नचित रहते हैं। श्रीकृष्ण का मन विदुर के यहां शाकपात खाकर भी सन्तुष्ट एवं प्रसन्न रहता है।

गुरुकुलीय सहपाठी, घनिष्ठ मित्र, निर्धन ब्राह्मण सुदामा को श्री कृष्ण ने द्वार पर आया हुआ सुना तो तुरन्त आसन छोड़कर भागे और आदर सहित अन्दर लाकर आसन पर बिठाया। उनके पैर धोये। उनकी दीन दशा देखकर श्रीकृष्ण की आखों में आंसू आ गए। कवि के शब्दों में–

**अंसुवन ही सों पग धोए।।**

बड़ी ही उदारता के साथ मित्र की सहायता भी की।

4. स्वस्थ मन – मन में दृढ़ता हो, आत्मविश्वास हो। यदि आत्मविश्वास नहीं है तो सफलता मिलने में सन्देह है–

**मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।।**

साहस की भावना जगाओ–

**खुद कदम चूम लेती है आ के मंज़िल।**
**अगर चलने वाला हिम्मत न हारे।।**

किसी नगर में एक मन्दिर बन रहा था। मजदूर काम कर रहे थे। एक पथिक ने पत्थर पर काम करते हुए एक मजदूर से पूछा– 'और क्या हाल है?

उत्तर मिला– 'बुरा हाल है। किस्मत ही खराब है। बस भुगत रहा हूँ और क्या बताऊँ?

आगे चलकर उसने दूसरे मजदूर से पूछा– 'कैसी गुजर रही है?"

दूसरे मजदूर ने मन्द मुस्कान के साथ कहा– 'बहुत अच्छी। देखो, इसकी मूर्ति बन रही है। मंदिर में प्राण प्रतिष्ठा होगी। भक्तगण पूजा करेंगे। गुणगान होगा। यह शुभ कार्य करके मेरा जीवन भी सफल हो जायेगा।'

विचार करें। काम एक सा है परन्तु मन की भावना अलग–अलग है। एक का अस्वस्थ है. मन में निराशा है, उदासीनता है, नकारात्मकता है, अनुत्साह है।

इसके विपरीत दूसरे व्यक्ति को देखिए। मन में प्रसन्नता है, संतोष है, उत्साह है। उसे एक आशा की किरण दिखाई पड़ रही है क्योंकि उसके मन में आत्मविश्वास है।

यही आत्मविश्वास मन को स्वस्थ रखता है।

5. निर्मलता – मन निर्मल होना चाहिए। कोई विकार न आने पाए। मन की मैल दूर करें। मन की मैल दूर होने पर ही भगवद्–दर्शन होते हैं–

**असीं अन्दर करिए साफ,**
**प्रम जी आवनगे।**
**जदों मन्दिर होवे साफ,**
**प्रभु जी आसन लावनगे।।**

शरीर की मैल उतारनी सरल है। साबुन से मल–मल कर नहाया, शरीर साफ हो गया। परन्तु मन की मैल उतारनी कठिन है।

कहते हैं कि एक बार भक्त भगवान् से कहने लगा – तेरे पूजन को भगवान, बना मन मन्दिर आलीशान। मन–मन्दिर की विशालता को सुनकर भगवान् गदगद हो गए और भक्त के दर्शन देने के लिए पहुंचे परन्तु तुरन्त ही वापस होने लगे। उस समय के दृश्य का चित्रण किया गया है। भक्त कहता है–

**आए वो और झांक कर जाने लगे।**
**दामन पकड़ मैंने कहा,**
**कहां लौटकर जाने लगे।**
**दामन झटक कर चल दिए,**
**और यूं कहने लगे।**
**बैठें कहां इस सदन में,**
**जब गैर हैं बैठे हुए।।**

अतः मन की सफाई अत्यावश्यक है–

**मन–मन्दिर में गाफ़ला झाड़ू रोज लगाया कर।।**

भगवद्–भक्ति के लिए मन को लगाने का प्रयत्न करते हैं। पर मन इधर–उधर भटकने लगता है। इसलिए भगवान् श्री कृष्ण से अर्जुन कहते हैं –

**चञ्चलं हि मनः कृष्ण।।** गीता 6/34

भगवन्! यह मन बड़ा चंचल है।

अतः उस परमपिता से प्रार्थना की गई है–

**यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु**
**सुप्तस्य तथैवेति।**
**दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः**
**शिवसंकल्पमस्तु।।**

यजु. 34/1

जागते हुए व्यक्ति का जो मन दूर–दूर तक चला जाता है, सोते हुए व्यक्ति का भी वही दिव्य शक्तिवाला मन उसी प्रकार दूर–दूर तक चला जाता है। दूर–दूर तक जाने वाला प्रकाशकों अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों का एकमेव प्रकाशक वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

सोते–जागते यह मन भ्रमाता रहता है। हम जाग रहे हैं, एक स्थान पर बैठे हैं परन्तु मन अन्यत्र भटक रहा है, कहीं घूम रहा है। हम बिस्तर पर पड़े सो रहे होते हैं लेकिन मन स्वप्न में पता नहीं कहां की सैर कर रहा होता है? कभी हंसता है, कभी रोता है। कभी–कभी तो ऐसा सुंदर मनपसन्द स्वप्न आ रहा होता है कि क्या कहना! यदि कोई जगा दे तो हम नाराज होने लगते हैं। उससे कहते हैं– सब गुड़ गोबर कर दिया। बड़ा अच्छा सपना आ रहा था। परन्तु कभी–कभी गड़बड़ी भी हो जाती है। अतः सपना देखते हुए सावधान अवश्य रहिएगा। नहीं तो लेने के देने भी पड़ सकते है।

एक बार की बात है। एक कपड़े का व्यापारी सो रहा था। सोते–सोते उसने स्वप्न में देखा कि वह कपड़ा बेच रहा है। भाव तय हो गया। कपड़ा मापने के लिए गज उठाया। माप कर ली। कपड़ा फाड़ने के लिए कैंची से कट लगाया और जोर से फाड़ दिया। कपड़ा फाड़ने की आवाज होने से पत्नी की आंख खुल गई। देखा– सेठ ने अपनी धोती ही फाड़ दी है। वह बोली– 'यह क्या किया?' सेठ ने कहा– 'मैं तो स्वप्न में कपड़े बेच रहा था।' परन्तु क्या बताएं? अपनी ही धोती फाड़ ली?'

एक और घटना आपके सम्मुख प्रस्तुत है–

एक मुहावरा है– घोड़े बेचकर सोना। यह मुहावरा कैसे बना? सुनिए–

एक घोड़े का व्यापारी था। घोड़े बेच कर काम चलाता था। दिन–रात क्रय–विक्रय के बारे में सोचता रहता। एक बार स्वप्न में उसने देखा– एक ग्राहक घोड़ा लेने आया है। मोल–भाव होने लगा। परन्तु तय नहीं हो पा रहा था। स्वामी जितने पैसे मांग रहा था, ग्राहक उतने देने को तैयार न था। इसी बातचीत के दौरान ही व्यापारी की आंख खुल गयी। देखा– न तो वहां घोड़ा था और न ही ग्राहक। वह फटाफट मुंह ढक कर सो गया और हाथ आगे बढ़ाकर कहने लगा– 'अच्छा, ले आ उतने ही दे दे।'

परन्तु अब क्या हो सकता था? जब चिड़िया चुग गई खेत। तभी से यह मुहावरा बन गया–

घोड़े बेच कर सोना। यदि घोड़े बेचकर नहीं सोए तो बाद में पछताना पड़ेगा।

कई लोग दिन में भी बड़े–बड़े सपने देखते हैं। उनका वर्णन करना हमारा विषय नहीं है।

जहां बड़े लोग बड़े–बड़े सपने देखते हैं, वहां अल्पायु बच्चे भी सपना देखने में पीछे नहीं हैं।

आप सोते हुए छोटे बच्चे पर नज़र डालें तो वह भी कभी हंसते, मुस्कुराते और कभी रोते हुए नजर आता है। कभी–कभी तो बच्चा अचानक ही सोते हुए जोर से रो पड़ता है। मां घबरा जाती है। क्या हुआ मेरे बच्चे को? थपकी देकर सुलाने का प्रयत्न करने लगती है।

अतः सोते और जागते हुए दूर–दूर जाने वाला मन वश में जल्दी आता ही नहीं। जितना प्रयत्न करो, उतना ही वह चंगुल से निकल भागता है।

इसीलिए शास्त्रों में कहा है–

**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।।**

मन ही मनुष्य के बंधन और मुक्ति का कारण है। महाराजा भर्तृहरि को संसार से वैराग्य हो गया। धन–धान्य–राज्यादि अपना सर्वस्व त्याग कर वन को चल पड़े। मार्ग में रात्रि हो गई। पूर्णिमा का चन्द्रमा चमक रहा था। मार्ग में उन्हें कोई चमकती हुई वस्तु नज़र आई। मन आकर्षित हुआ। उन्हें लगा कि कोई मूल्यावान् वस्तु है। संभवतः हीरा। भर्तृहरि ने उसे उठाने के लिए आगे हाथ बढ़ाया। परन्तु हाथ में कुछ गीला – गीला सा लगा। ध्यान से देखा। पान की पीक थी। कोई यात्री पाकर खाकर मार्ग में थूक गया था। भर्तृहरि बड़े लज्जित हुए। उनके मुंह से अनायास ही निकल गया–

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

# पत्र/कविता

## सत्यार्थ प्रकाश की महिमा

सत्यार्थ प्रकाश के पढ़ने से बुद्धि अति निर्मल होती है।
अज्ञान नष्ट हो जाता है, सत ज्ञान की जलती ज्योति है।
कल भूखा शंकर मन्दिर में कहे सृष्टिकर्ता ये शंकर है।
शिवरात्रि को लीला देखी तो कहने लगा ये तो कंकर है।।
इन अन्धकार के कारण ही सोमनाथ की धरती रोती है।
मूल समुल्लसा में मूल नहीं, सृस्टी का मूल दरसाया है।।
चौथे सातवें पर रहता नहीं, न गंग–जमन में पाया है।
पत्ता–पत्ता दे रहा पता, दुनियां जंगलों में जोहती है।।
दुनिया के सारे ग्रंथों को योगी ने खूब निचोड़ा है।।
झूठे मत–मतान्तरों का भाण्डा, चौराहे पे फोड़ा है।
तर्कों के तीरों से तीर हुए तर्क सामवेद कसौटी है।
गर ऋषि से बातें करनी तो रोजाना सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ो।।
फिर जो–जो मन में संशय उठे इस ग्रंथ से फौरन उत्तर लो।
इसका पन्ना–पन्ना है और अक्षर मोती मोती है।।
ये चौदह गोली का पिस्टल जिसकी पाकेट में आएगा।
भय भूत सभी भग जाएंगे जादूगर वो बन जाएगा।
अंजील कुरान के अर्थों की आज सफाई होती है।।
श्रद्धा से श्रद्धानन्द ने भी अपना सर्वस्व लुटाया है।
लेखराम मुसाफिर ने बच्चा भी भेंट चढ़ाया है।
पर आज की हालत देखता हूं गर्दन नीचे को होती है।।
सत्यार्थ के इस लेखक ने जो लिखा करके दिखलाया है।
शिवरात्री को वो आया था दिवाली ने उसे बुलाया है।।
आशानन्द' भारतमाता आज अंसुवन के हार पिरोती है।।
अज्ञान नष्ट हो जाता है सतज्ञान की ज्योति जलती है

–आशानन्द भजनीक

## मुस्लिम समाज के प्रबुद्ध लोग अपनी सोच में व्यापक दृष्टि अपनायें

देवबंद के दारुम उलुम के अधिवेशन में उलेमाओं द्वारा सूर्य नमस्कार से संविधान की आत्मा जख्मी होना बतलाया गया। इस विषय पर निवेदन है–

सृष्टि रचना करने वाली अदृश्य सत्ता परमात्मा ने सूर्य और चन्द्रमा की रचना की। सम्पूर्ण प्राणियों के जीवन संचालन में सूर्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है अगर दो, तीन दिन तक लगातर सूर्य नहीं निकलता है तो मनुष्य का जीवन कितना कठिन हो जाता है।

सूर्य का प्रकाश और गर्मी, हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी समान रूप से ग्रहण करते है सूर्य किसी के साथ भेदभाव नहीं करता। ऐसे में सूर्य को नमस्कार करके उसे सम्मान देने में क्या बुराई है?

व्यावहारिक जीवन में भी हम भला करने वाले को नमस्कार करते हैं। जो कि मानव होने के नाते शिष्टाचार का तकाजा है। हम इसमें भेद नहीं करते कि हम मुसलमान हैं या हिन्दू हैं और करना भी नहीं चाहिये।

मुस्लिम उलेमाओं को मालूम होना चाहिए कि ईश्वर उपासना करना (खुदा की इबादत करना) और सूर्य को नमस्कार करना दोनों अलग–अलग विषय हैं। 80 प्रतिशत हिन्दू समाज परमात्मा का ध्यान करता है। लगभग 80 प्रतिशत परमात्मा का ध्यान करते हैं। प्रातः उगते सूर्य का दर्शन कर ओज, ताज़गी ग्रहण करते हैं और सम्मान हेतु सूर्य नमस्कार भी करते हैं। उगते हुए सूरज को देखने से ओज, स्फूर्ति एवं ताजगी का आहसास होता है। इसका वैज्ञानिक कारण (Scienfitic Reason) है जिसे प्रयोग करके देखा गया है। जो लोग अनभिज्ञ है वे इसे करके देख सकते हैं।

सूर्य नमस्कार मानवीय मूल्यों के अन्तर्गत आता है। मानवता का तकज़ा है कि व्यक्ति उपकार करने वाले का सम्मान करे।

ऐसे में मुस्लिम समाज के उलेमाओं द्वारा सूर्य नमस्कार को साम्प्रदायिक बताना या संविधान के जख्मी होने की बात कहना सही नहीं होगा, बल्कि सूर्य नमस्कार को व्यवहार में लाने से आपसी एकजुटता और बढ़ेगी। कुछ क्रियाकलाप सम्पूर्ण मानव मात्र पर लागू होते हैं। इसे महजब या सम्प्रदाय विशेष में नहीं बता सकते। मुस्लिम समाज के प्रबुद्ध लोगों से अनुरोध है कि अपनी सोच में व्यापक दृष्टि अपनायें न कि संकुचित दृष्टिकोण।

आचार्य श्रुति भास्कर
6/1091, स्वतंत्र नगरी, भूतेश्वर मन्दिर मार्ग,
सहारनपुर 247001
मो. 09412742557

**********

## तुष्टीकरण की होड़

1. पिछली सरकार ने अल्पसंख्यकों के लिए 20 कार्य किए

– धर्म के आधार पर देश का विभाजन– हिन्दुओं को द्वितीय श्रेणी के रूप में पाकिस्तान और बांग्लादेश में ही रहने का परामर्श– अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को पाकिस्तान नहीं भेजना– अब उसकी 5 शाखाएं 5 राज्यों में खोलना– उर्दू को मान्यता और बढ़ावा देना– अल्प संख्यकों को मान्यता देना और अनुच्छेद 29 व 30 में अल्पसंख्यों को विशेषाधिकार देना– धारा 370 व 371 लगाना– जम्मू–काश्मीर में दूसरे ध्वज को मान्यता देते हुए अलग संविधान बनाने देना– अल्प संख्यक आयोग को बने रहने देना– अल्पसंख्यक विकास एवं वित्त निगम को जारी रखना– अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान आयोग को बने रहने देना–अल्पसंख्यक मामलों संबंधी मंत्रालय को बनाकर चालू रखना, अल्प संख्यक छात्रों को छात्रवृतियां, कम व्याज पर कर्ज–निशुल्क कोचिंग की व्यवस्था तथा अनुदान देना– 90 जिलों को 20 प्रतिशत के आधार पर अल्पसंख्यक बहुल घोषित करना–15 सूत्रीय कार्यक्रम–प्राकृतिक संसाधनों पर अल्पसंख्यकों का पहला अधिकार घोषित करना–अल्पसंख्यक बहुल क्षेत्रों में स्कूल कॉलेज खोलना, अल्पसंख्यकों को नसबंदी छोटे परिवार की राय न देना– अल्पसंख्यकों के लिए करोड़ों रूपए का प्रावधान करना आदि।

2. अल्प संख्यक युवाओं को मिलेगी नई मंजिल

वर्तमान सरकार ने उपरोक्त 20 योजनाओं को जारी रखते हुए 7 और नई योजनाएं शुरू करके बहुसंख्यकों को अंगूठा दिखा दिया है–

उस्ताद योजना–नई रोशनी योजना–नई मंजिल योजना– एकीकृत शिक्षा और आजीविका योजना, हुनरमंद योजना–रोजगारोन्मुख प्रशिक्षण योजना–एवरलास्टिंग फ्लेम योजना आदि।

क्या जागने की आवश्यकता है?........

आई. डी. गुलाटी
चौक बाजार, बुलंदशहर 203001

**********

## कौन सा अर्थ ठीक माना जाय, और क्यों

भारतीय आर्ष साहित्य के अन्तर्गत उपनिषदों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें 'तैत्तरीय उपनिषद्' निस्सन्देह अद्वितीय है। क्योंकि इसमें गृहस्थ की दीक्षा देने से पहले अध्यात्म शिक्षा का भी कथन किया गया है। अस्तु............... । इस समय हमारे सामने तैत्तरीय उपनिषद् की दो टीकाएं मौजूद हैं। आर्य जगत् के सर्वमान्य नेता स्व. पं.नारायणस्वामीजीद्वारा'उपनिषद्–रहस्य' नाम से की गई टीका, तथा श्री गुरुदत्त जी वैद्य की 'सरल सुबोध भाषा–भाष्य' नाम से की गई टीका।

इनमें एकादश अनुवाक के अन्तर्गत जब आचार्य अपने शिष्य (शिष्यों) को वेदाध्ययन कराने के उपरान्त उपदेश करता है कि 'धर्मंचर' 'सत्यंवद' तथा मातृदेवो भव' 'पितृदेवो भव' आदि तभी आचार्य–उन्हें दान के सम्बन्ध में भी उपदेश देता है कि 'श्रद्धया देयम्' – 'अश्रद्धया देयम्'। इन शब्दों के विद्वानों ने दो प्रकार के अर्थ किये हैं। प्रथमः– (हे शिष्य!) विद्वानों को दान 'श्रद्धा से देना' 'अश्रद्धा से देना' किन्तु देना अवश्य। पं. नारायण स्वामी जी ने इसी अर्थ के कुछ असमंजस के साथ स्वीकार करते हुए मान्यता दी है। पं. जी ने (नीचे नोट में) लिखा है कि शंकराचार्य ने 'अश्रद्धया देयम्' के अर्थ किये हैं कि अश्रद्धा से दान (अदेयम्) नहीं देना चाहिए, परन्तु विद्यारण्य स्वामी और राघवेन्द्र यति आदि ने 'अश्रद्धया+अदेयम् नहीं अपितु 'अश्रद्धया+देयम्' ही समझकर अश्रद्धा से भी देना चाहिए, ऐसा ही अर्थ किया है, और यही ठीक मालूम होता है।' दे.म. नारायण स्वामी, प्रकाशक सार्वदेशिक आ.प्र. सभा नई दिल्ली–2 आठवीं बार– पृ. 41) (उन्होंने साधिकार इस अर्थ को न मानकर ..........और यही ठीक मालूम होता है–) लिखा है।

दूसरी ओर श्री गुरुदत्त जी ने स्पष्ट रूप से लिखा हैः– 'श्रद्धया देयम्' (अश्रद्धया ऽ देयम्) श्रद्धा पूर्वक दान देना चाहिए, अश्रद्धा से नहीं।

यहाँ आर्य विद्वानों के लिए विचारणीय यह है कि कौन सा अर्थ ठीक माना जाय? और क्यों? जबकि शंकराचार्य ने 'अश्रद्धयाऽदेयम' को ही ठीक माना है, और इसी का अनुसरण करते हुए श्री गुरूदत्त जी ने भी 'अश्रद्धयाऽदेयम' को उचित ठहराया है।

डॉ सहदेव वर्मा
24/4 बिशन स्वरूप कॉलोनी,
पानीपत–132403
दूरभाष– 0180 2643700

।। ओ३म् ।।

# देश को आज़ाद कराने वाले दो जानवर

● डॉ. सर्वेश वेदालंकार

भारत देश को आज़ाद कराने में दो जानवरों की मुख्य एवं अहम भूमिका है। अगर ये दो जानवर न होते तो हमारा देश अंग्रेजों से कभी भी आज़ाद ही न होता और मंगल पाण्डेय आदि स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का अस्तित्व ही न होता। ये दो जानवर हैं गाय और सूअर। इन जानवरों की चर्बी युक्त कारतूसों के विरोध पर ही 1857 ई. की क्रान्ति का बिगुल बजा और संपूर्ण देश में क्रान्ति छा गई। और अमर शहीद मंगल पाण्डेय ने 29 मार्च 1857 ई. को चर्बीयुक्त कारतूसों का डटकर विरोध किया तथा यह विद्रोह मेरठ, कानपुर, लखनऊ, व झांसी आदि में अत्यधिक फैला। इस विद्रोह से अंग्रेजों के हाथ, पैर फूल गये थे। इस विद्रोह के विषय में जॉन लॉरेन्स ने कहा कि "यदि उनमें (विद्रोहियों) एक भी योग्य नेता रहा होता तो हम सदा के लिये हार जाते।" परन्तु उस समय योग्य नेतृत्व की कमी रही जिस कारण से सभी ने हार का सामना किया और फाँसी के फंदे पर चढ़े और आत्मबलिदान दिया तब से लगातार क्रान्तिवीर लगभग सभी आत्म बलिदान ही देते रहे। उस समय अंग्रेजों का वर्चस्व व्याप्त हो रहा था और निम्न स्तर के लोगों का, किसान आदि का शोषण हो रहा था तथा सैनिकों को युद्ध के लिये विदेशों में भेजा जाना तथा अतिरिक्त यात्रा भत्ता आदि का न देना आदि क्रम जारी था परन्तु इस पर लोगों का ध्यान कम था, लोगों का ध्यान उस समय अधिक गया जब अंग्रेजों ने धार्मिक भावना का शोषण प्रारंभ कर दिया और कारतूसों में चर्बी युक्त कैप लगाये और इन कारतूसों के कैप को मुँह से खोलना होता था अर्थात् दांतों से निकालना होता था और उसमें भी जो हिन्दुओं को कारतूस दिये जाते थे तो उनमें गाय की चर्बी लगी होती थी और जो मुसलमानों को कारतूस दिये जाते थे उनमें सूअर की चर्बी लगी होती थी। इस धार्मिक अपमान की ठेस को न हिन्दू सहन कर सका और न ही मुसलमान। इसलिये दोनों ने एक साथ मिलकर देश की आज़ादी के लिए प्राणों की आहुतियाँ दी।

हमारे देश में पशुओं का कितना अधिक महत्व है! हमारा अधिकांशतः जीवन पशुओं पर ही आधारित है तथा इन्हीं पशुओं के कारण ही हमारा अस्तित्व है वह चाहे दैनिक जीवन की बात हो या रणक्षेत्र की बात हो। झाँसी की रानी, महाराणा प्रताप और शिवाजी मौर्य आदि का अस्तित्व अश्वों के कारण ही बच पाया। प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन तक पशु हमारे जीवन में अहम भूमिका निभाते रहें हैं और आगे भी सदा निभाते रहेंगे। पशु सदैव अपने मालिक के वफादार होते हैं और मालिक की जान और माल की रक्षा अपने प्राणों को न्योछावर करके करते हैं और अपने स्वामी के गौरव एवं यश को आगे बढ़ाते हैं। इसी कारण आज यदि हम जितने भी स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों, राजा व महाराजाओं का जो भी गुणगान करते हैं उसमें पशुओं का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से योगदान होता है। इसीलिये इनको जानवर कहते हैं क्योंकि ये अपने मालिक की रक्षा जान पर खेल कर करते हैं, अपनी जान अपने मालिक पर वार कर देते हैं। मैंने न देखा है मात्र अन्य के मुख से सुना है कि 1962 या 1965 के युद्ध में जब हमारी सेना हारने लगी थी तब युद्ध में हिस्सा लेने के लिये रूसी बन्दर बुलाये गये थे तब हमारी जीत हुई थी और तब से लंगूरों को भी युद्ध कौशल की शिक्षा दी जाने लगी।

इसी कारण हमारे मनीषियों ने प्राचीन काल में पशुओं को धन की श्रेणी में रखा था। तभी कहा गया था कि गौधन, गजधन, बाजधन ये ऐसे धन हैं जिनसे राष्ट्र की रक्षा होती है और देश समृद्धिशाली होता है। और शायद इसीलिये पुराणों में सुअर और गाय का अत्यधिक वर्णन मिलता है। गाय को माता कहा गया और भगवान् विष्णु को वराह अवतार में दिखाकर पृथ्वी को समुद्र से बाहर निकाला तथा पूरी पृथ्वी के साथ संपूर्ण ब्रह्माण्ड का उद्धार किया। पुराणों में दृष्टान्तों के रूप में बताने का अर्थ यह है कि गाय और सुअर का जो महत्व है वह कहीं न कहीं से देश व राष्ट्र के साथ मानव जीवन में छूते हैं। इस प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप के स्पर्श को हम समझ नहीं पाते हैं और एकाँगीधारा में तथा आज की चकाचौंध में बह जाते हैं और न जाने कितनी पशुवध शालाओं और सुअर बाड़ों को खोल लिया है। मुझे बड़ी शर्मिन्दगी महसूस हो रही है यह बताने में कि भारत सरकार ने प्रतिदिन चार हज़ार पशुओं को काँटने का लाइसेंस जारी कर रखा है और इन पशुओं के मांस को विदेशों में भेजा जाता है और चिल्लाते खूब हैं गाय हमारी माता है, गौ–रक्षा अभियान जिन्दाबाद। और वराह रूप सुअर हमारे भगवान विष्णु भगवान हैं इनको पौराणिकों ने धर्म में जोड़ दिया परन्तु आज तक इनकी सुरक्षा का कोई भी प्रबन्ध नहीं किया।

इन्हीं पशुओं से प्राचीन काल में देश व राष्ट्र रक्षा होती थी, सतयुग, त्रेता और द्वापर युग में गौधनरक्षा हेतु राजा युद्ध के लिये आतुर रहा करते थे और मध्यकाल में अंग्रेजों से आज़ादी पाने के लिये गौधन एवं वराह ने लगभग सभी राजाओं को व नवाबों को एकत्रित किया और अंग्रेजों से देश को आजाद कराने के लिये सभी आतुर हो उठे जिसमें धीरे–धीरे निम्नवर्ग भी सम्मिलित होने लगा और सभी ने देश को आज़ाद कराने के लिए आवाजें बुलन्द कीं। गरम दल और नरम दलों के साथ निम्न वर्ग ने भी अपने प्राणों की आहुतियों को देते हुये अन्ततः देश को आज़ाद करा लिया और आज हम अपने आज़ादी के दीवानों पर गर्व करते हुये जश्न मनाते हैं और उनका नाम बड़े ही श्रद्धापूर्वक व सम्मान के साथ लेते हैं। इन सभी स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का अस्तित्व इस पशुधन के कारण ही है। संपूर्ण देश को इस पशुधन की सुरक्षा के लिये सदैव सजग व तत्पर रहना है क्योंकि हम सबका अस्तित्व इन्हीं के कारण ही है।

ग्राम+पोस्ट– चौबेपुर (बजरिया)
जनपद–कानपुर (नगर)
पिन–209203 उ.प्र.।

---

☞ *पृष्ठ 09 का शेष*

**तृष्णा न जीर्वा वयमेव जीर्णाः।।**

वस्तुतः तृष्णा (लालसा) बूढ़ी नहीं हुई, हमीं बूढ़े हो गए।

देखा आपने भर्तृहरि हीरे, मोती, सोना आदि तमाम कीमती चीजें छोड़कर वन में गए थे। वैरागी थे। परन्तु वाह रे मन! कहां से कहां धकेल दिया। आकाश में ले जाकर फिर धरती पर पटक दिया। यह मन पान की पीक को ही हीरा समझ बैठा। आखिर मन ही तो है। कभी किधर तो कभी किधर। पता नहीं, कब त्यागी से भोगी बना दे। कुछ कहा नहीं जा सकता।

इस विषय पर हम जितना विचार करते है उतना ही उलझते चले जाते हैं। मन की गुत्थी को कैसे सुलझाएं?

कहते हैं, एक साधु के पास उनके गुरु जी आ गए। वहीं शिष्य के आश्रम में ठहरे। आश्रम में अनेक शिष्य रहते थे। एक सप्ताह के लिए 'श्रीमद्भगवद् गीता' ज्ञान यज्ञ का आयोजन किया गया। कथा बहुत प्रभावशाली रही। सप्ताहान्त में गुरु जी की विदाई का समय आ गया। साधु हाथ जोड़ कर अत्यन्त विनम्रता के साथ बोला– 'गुरुदेव! मेरा गीता पढ़ने का बहुत मन कर रहा है।' गुरु जी ने गीता दे दी।

साधु ने बड़ी ही श्रद्धा के साथ गीता को कपड़े में लपेट कर कुटिया में रख दिया। एक दिन उसकी नज़र पड़ी। ध्यान से देखा तो चूहे ने उसे कुतर दिया था। उसे बड़ी चिन्ता हुई। अपने शिष्यों को बताया। एक शिष्य ने कहा– 'बिल्ली रखनी चाहिए। वह चूहों को खा जाएगी।'

बात सभी को पसन्द आ गई। बिल्ली को रख लिया। तीन–चार दिन तो बिल्ली ने बड़ी ही उछलकूद के साथ चूहे मारे। परन्तु ठीक से खाना न मिलने से वह बहुत कमजोर हो गयी। चूहे मारने बन्द कर दिए।

साधु ने फिर शिष्यों को एकत्र किया। विचार विमर्श हुआ। एक शिष्य बोला– 'बिल्ली को स्वस्थ रखने के लिए दूध पिलाना चाहिए।' पर दूध का प्रबन्ध कैसे हो? दूसरे शिष्य ने समाधान प्रस्तुत किया– 'गाय रखनी चाहिए।' सभी ने समवेत स्वर में इसका समर्थन किया।

गाय आ गयी। दो–तीन दिन तो गाय ने ठीक से दूध दिया। परन्तु वह मरियल सी हो गयी। दूध देना बन्द करने लगी। साधु ने पुनः शिष्यों से सलाह ली। बीच में से एक शिष्य ने परामर्श दिया– 'गाय की देखभाल के लिए एक महिला को रख लेना चाहिए। जब गाय को समय पर चारा, दाना–पानी मिलेगा तो तो फिर दूध देने लगेगी।'

सभी को यह सुझाव जंच गया। महिला को रखलियागया।कामठीकसेचलनेलगा।चिन्ताएं समाप्त हो गईं। समय बीतने लगा। कई साल निकल गए। वह साधु बाल बच्चों वाला हो गया।

एक दिन वह साधु अपने बाल बच्चों के साथ कहीं जा रहा था। मार्ग में अचानक गुरु जी के दर्शन हो गए। बाल–गोपाल के साथ देखकर गुरुजी ने पूछ लिया– 'अरे! यह सब क्या है?'

शिष्य ने उत्तर दिया– 'गुरु जी! यह सब 'गीता' की करामात है। गीता का ही विस्तार है, गीता का प्रचार है।'

यह सुनकर गुरुजी भी मन्द–मन्द मुस्कान के साथ आगे बढ़ गए।

देखा आपने! मन ने साधु को कहां से कहां पहुंचा दिया। इससे अधिक अधोगति भला और क्या हो सकती है?

अतः सावधान! सफलता के लिए मन का निर्मल होना अनिवार्य है। इसी के दृष्टिगत मन की निर्मलता के लिए मानस तीर्थ में स्नान करने का विधान किया गया है–

**ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे।**
**यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्।।**

स्कन्द पु. 6/41

ध्यान से पवित्र, ज्ञान रूपी जल से शुद्ध तथा रागद्वेष रूपी मैल के नष्ट होने पर जो मानस तीर्थ में स्नान करता है, वह परमगति अर्थात् मुक्ति को प्राप्त होता है।

कबीर ने भी इसी बात को स्वीकार किया है –

**कबिरा मन निर्मल भया जैसे गंगानीर।**
**पाछे लागा हरि फिरै,**
**कहत कबीर–कबीर।।**

आइए, मन को सुमन बना कर पुष्प की भांति खिलाएं। खिला हुआ कमल कीचड़ और जल में रहते हुए भी उससे ऊपर रहता है। उसी प्रकार हम भी सांसारिक वस्तुओं का उपभोग करते हुए भी उनमें लिप्त न हों। गुलाब का फूल कांटों के बीच में रहकर भी खिला रहता है। संकटों मे घिरे होने पर भी मनुष्य को गुलाब के सदृश प्रसन्नचित्त रहने का प्रयत्न करना चाहिए। तभी मानव जीवन की सार्थकता है।

4–E, कैलाश नगर,
फाजिल्का, पंजाब
मो. 09463428299

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 13-14/5/2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

# महात्मा हंसराज जी की याद में हुआ ग्यारह कुण्डीय यज्ञ

उ माता पुन्ना देवी डी.ए.वी. सी. सै. पब्लिक विद्यालय कालांवाली में डी.ए.वी. के त्याग मूर्ति व युग निर्माता महात्मा हंसराज जी के पावन जन्मोत्सव पर आदरणीय प्रधानाचार्या श्रीमती संगीता कक्कड़ जी की अध्यक्षता में ग्यारह कुण्डीय भव्य यज्ञ का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में ग्यारह कुण्ड बनाए गए। जिनमें विद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा यजमान के रूप में यज्ञ किए गए। सभी बच्चों ने पूर्ण उत्साह व श्रद्धा के साथ बच्चों ने सच्चे मन से महात्मा हंसराज जी को याद करते हुए यज्ञ की पावन अग्नि में आहुतियाँ दी गई। बच्चों द्वारा महात्मा हंसराज जी के जीवन पर आधारित सुंदर-सुंदर भाषण, कविताएँ व भजन प्रस्तुत किए गए। विद्यालय की प्रधानाचार्या जी ने महात्मा हंसराज जी की जीवनी से बच्चों को अवगत करवाते हुए बच्चों को महात्मा हंसराज जी के बताए गए रास्ते पर चलने की प्रेरणा दी।

प्रधानाचार्या जी ने बताया कि महात्मा हंसराज जी ने डी.ए.वी. के बीज को बोआ था तथा अब डी.ए.वी. की 816 शाखाएँ निरंतर प्रगति के रास्ते पर चल रही हैं। अंत में सभी बच्चों को प्रसाद वितरित किया गया। इस अवसर पर विद्यालय का सम्पूर्ण शिक्षक वर्ग उपस्थित रहा।

# उत्तम नगर गड़ेपान, कोटा में यज्ञ से हुआ नये सत्र का शुभारम्भ

उत्तम नगर गड़ेपान, कोटा राजस्थान में स्थित सी एफ डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल में सत्रारंभ यज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञ में विद्यार्थियों ने सुमधुर स्वरों में वैदिक मंत्रों का पाठ किया। इस अवसर पर मुख्य यजमान के रूप में चम्बल फर्टिलाइज़र एण्ड केमिकल्स लिमिटेड के अध्यक्ष तथा विद्यालय की स्थानीय कार्यकारिणी समिति के चैयरमेन श्रीमान विनोद मेहरा एवं उत्तम महिला समीति की अध्यक्षा श्रीमती रीटा मेहरा ने अपने कर कमलों से नवनिर्मित भवन का लोकार्पण किया। विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती अंजू उतरेजा ने अतिथियों का स्वागत एवं अगुवाई की तथा अपने उद्बोदन में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए शिक्षा के साथ-साथ अच्छे संस्कारों की महत्ता पर प्रकाश डाला और कहा कि संस्कारों के बिना शिक्षा का सही उपयोग नहीं किया जा सकता। मानव को शिक्षित होने के साथ संस्कारित भी होना चाहिए। उन्होंने कहा कि मनुष्य को ऊचे स्वप्न देखने चाहिए तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए पूरी मेहनत करनी चाहिए।

इस अवसर पर चम्बल फर्टिलाइज़र के अन्य पदाधिकारियों में श्रीमान एवं श्रीमती ए के भार्गव, श्रीमान विशाल माथुर, श्रीमान के. के. जिन्दल, श्रीमान दीपक पाठक एवं सी. एफ. सी. एल. के अन्य पदाधिकारी तथा अभिभावक उपस्थित थे।

मेघावी छात्रों को पुरस्कार वितरित करके छात्रों को संबोधित करते हुए श्रीमान मेहरा ने कहा कि देश के विकास के लिए बालकों का सर्वांगीण विकास होना अति आवश्यक है साथ ही साथ दुनिया के साथ चलने के लिए हमें भी मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा के आधुनिककरण पर बल देना चाहिए।

# डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल लारेंन्स रोड अमृतसर ने मनाया आर्य समाज स्थापना दिवस

21 डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल लारेंस रोड अमृतसर में आर्य समाज का स्थापना दिवस बड़े हर्षोल्लास व उमंग से मनाया गया। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सम्मान में आयोजित इस सभा का शुभारम्भ वेद ध्वनि से किया गया। विद्यार्थियों को आर्य समाज की स्थापना के विषय में जानकारी देते हुए बताया गया कि आर्य समाज का उद्देश्य व्यक्ति को श्रेष्ठ बनाकर सुदृढ व स्वस्थ समाज की स्थापना करना है। इस अवसर पर गान व कविताएँ प्रस्तुत की गईं। स्कूल की वरिष्ठ अध्यापिका श्रीमती नीरू मेहता जी ने स्व रचित कविता के द्वारा आर्य समाज की वृहद भूमिका को उजागर किया। संगीत की लहरियों पर मंत्र उच्चारण द्वारा विद्यालय का समस्त वातावरण वेदमय हो उठा। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद जी के चरित्र व उपदेशों को दर्शाती चित्रात्मक अभिव्यक्तियाँ भी प्रदर्शित की गईं ताकि उनके महान व्यक्तित्व से सभी प्रेरित हों और आर्य समाज द्वारा प्रज्ज्वलित मशाल अखंड जलती रहे। समारोह के अंत में महर्षि के सद्वचन को एक सुविचार के रूप में प्रस्तुत किया गया।

स्कूल की प्रधानाचार्या डॉ. (श्रीमती) नीरा शर्मा जी ने इस दिवस की बधाई देते हुए कहा कि हम सभी को श्रेष्ठ जन बनने के लिए प्रयारसत रहना होगा और ऋषि के दिखाए सत्य, धर्म और त्याग के रास्ते पर चलकर समाज, देश और राष्ट्र के उत्थान में अपना योगदान देना होगा।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू-30, ओखला, फेस-II, नई दिल्ली-110020 (दूरभाष : 26388830-32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.-9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक - **पूनम सूरी**